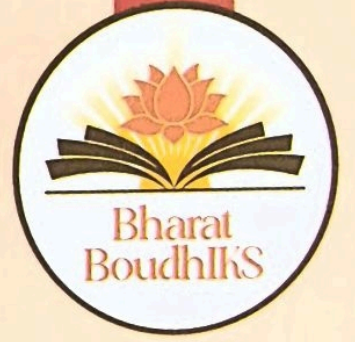




खंड-4

भारतीय आरोग्य ज्ञान

सनातन ज्ञान : युवा उत्थान



भारतीय आरोग्य ज्ञान



1. भूमिका

यह पुस्तक आयुर्वेद और योग के समन्वय को एक पूरक मार्ग के रूप में प्रस्तुत करती है, जो स्वास्थ्य और कल्याण प्राप्त करने के लिए प्राचीन भारतीय दर्शन की दृष्टि से आधुनिक स्वास्थ्य चुनौतियों का समग्र समाधान प्रदान करता है। पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) की अवधारणा में निहित यह दृष्टिकोण शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक कल्याण के गहरे संबंध को महत्व देता है। आयुर्वेद के अनुसार स्वास्थ्य केवल रोग की अनुपस्थिति नहीं, अपितु जीवन के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु एक अनिवार्य तत्व है। आयुर्वेद में त्रिदोष (वात, पित्त, कफ), जठराग्नि तथा सप्त धातुओं के संतुलन को मानव शरीर की एक गतिशील एवं परस्पर-निर्भर प्रणाली के रूप में समझाया गया है। यह दृष्टिकोण आधुनिक चिकित्सा की एकरूप विधियों के विपरीत, प्रत्येक व्यक्ति की प्रकृति (प्रकृति) तथा बाह्य परिस्थितियों के अनुसार व्यक्तिगत स्वास्थ्य पद्धतियाँ प्रदान करता है। त्रिदोष शरीर की क्रियाओं एवं मानसिक अवस्थाओं को नियंत्रित करते हैं, तथा इनमें असंतुलन के कारण शारीरिक लक्षणों के साथ-साथ मानसिक विकार भी उत्पन्न हो सकते हैं। आहार, दिनचर्या एवं उपचारों को किसी व्यक्ति की प्रकृति के अनुसार ढालकर, आयुर्वेद एक ऐसा उपचार-पथ प्रदान करता है जो प्राकृतिक लय के अनुकूल होता है।

आयुर्वेद में प्राकृतिक वेगों के नियमन – जैसे निद्रा, आहार, एवं संयम – को स्वास्थ्य बनाए रखने के लिए अत्यंत आवश्यक माना गया है। रात्रि की निद्रा को उत्तम और पुनर्योजनकारी माना गया है, जबकि दिन में केवल ग्रीष्मकाल में ही विश्राम (दिवा-निद्रा) वात दोष के संतुलन हेतु अनुशंसित है। अधिक निद्रा कफ और पित्त दोष को बढ़ा सकती है। निद्रा विकारों जैसे अनिद्रा हेतु आयुर्वेद में तैलमर्दन, शांतिप्रद भोजन एवं शांति-युक्त वातावरण को लाभकारी बताया गया है, जबकि अधिक अथवा अनुचित समय की निद्रा के लिए उपवास, व्यायाम एवं सतर्क जीवन-शैली अपनाने की सलाह दी

जाती है। आयुर्वेद में रोग-निदान एवं उपचार एक सामूहिक प्रक्रिया है जिसमें चिकित्सक, औषधि, रोगी तथा परिचारक की सहभागिता आवश्यक मानी गई है। नाड़ी-परीक्षण, मूत्र और मल-परीक्षण जैसे निदान पद्धतियाँ केवल लक्षणों को नहीं, बल्कि रोग के मूल कारण को जानने में सहायक होती हैं। आयुर्वेद इस बात पर विशेष बल देता है कि आहार, निद्रा एवं जीवन-शैली, व्यक्ति की प्रकृति एवं वर्तमान दोषों के असंतुलन के अनुसार विन्यस्त हों, जिससे समग्र स्वास्थ्य की प्राप्ति संभव हो सके।

आयुर्वेद में उपचार की विधियाँ अनेक प्रकार की होती हैं, जिनमें औषधीय वनस्पतियों का प्रयोग, पंचकर्म जैसे विषहरण (डिटॉक्स) प्रक्रियाएँ, तथा मर्म बिंदुओं की मालिश जैसी शारीरिक चिकित्साएँ सम्मिलित हैं। पंचकर्म एक व्यापक विषहरण पद्धति है, जिसमें पूर्व-उपचार, शुद्धिकरण तथा पुनर्स्थापन की चरणबद्ध प्रक्रिया के माध्यम से शरीर से दोषों का निष्कासन कर संतुलन स्थापित किया जाता है। स्वास्थ्य बनाए रखने हेतु शुद्ध जल का सेवन, ताजा भोजन का प्रयोग, और उचित पाचन की महत्ता को भी विशेष रूप से रेखांकित किया गया है। ये सभी विधियाँ इस बात को दर्शाती हैं कि आयुर्वेद केवल लक्षणों के उपचार तक सीमित न रहकर रोगों के मूल कारणों को समाप्त करने में विश्वास करता है। आयुर्वेद के साथ-साथ यह अध्याय योग को भी संतुलन प्राप्त करने की एक अनिवार्य साधना के रूप में प्रस्तुत करता है। योग, केवल शारीरिक आसनों तक सीमित नहीं है, अपितु मानसिक और आध्यात्मिक अनुशासन को भी समाहित करता है, जिससे यह एक समग्र जीवन-दृष्टि बन जाता है। पतञ्जलि के योगसूत्र नैतिक आचरण, मानसिक नियंत्रण तथा आत्मबोध की दिशा में मार्गदर्शन देते हैं, जिसे अष्टाङ्ग योग के आठ अंगों के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। आसन (शारीरिक मुद्राएँ), प्राणायाम (श्वास नियंत्रण) तथा ध्यान जैसी क्रियाएँ न केवल शरीर को स्वस्थ बनाती हैं, बल्कि मानसिक तनाव को कम करने, भावनात्मक संतुलन को विकसित करने, तथा मानसिक स्पष्टता को बढ़ाने में भी सहायक सिद्ध होती हैं। योग जीवन के तनावों की जड़ों को स्पर्श कर आत्मचिंतन व आत्मबल को विकसित करता है। आधुनिक जीवन की तीव्र गति एवं तनावपूर्ण परिवेश में योग, भावनात्मक दृढ़ता, शारीरिक ऊर्जा और आध्यात्मिक उन्नति का एक रूपांतरणकारी साधन प्रदान करता है। सजगता (माइंडफुलनेस) एवं आत्म-जागरूकता की योगिक विधियाँ व्यक्ति को तनाव को बेहतर ढंग से सँभालने में समर्थ बनाती हैं, जिससे योग एक समग्र और प्रभावशाली स्वास्थ्य उपकरण बन जाता है। योग की समग्र दृष्टि – शरीर, मन और आत्मा की एकता – आयुर्वेद के सिद्धांतों को पूरक बनाती है, जिससे व्यक्ति संतुलन, उद्देश्य और संतुष्टि के साथ जीवन जी सकता है।

अंततः, यह अध्याय आयुर्वेद और योग को आपस में जुड़े हुए ऐसे पद्धति-समुच्चय के रूप में प्रस्तुत करता है, जो शारीरिक, मानसिक और आत्मिक – सभी स्तरों पर स्वास्थ्य की पूर्णता को लक्ष्य बनाते हैं। आयुर्वेद की ज्ञानसंपदा और योग की रूपांतरणकारी साधनाओं को एकीकृत कर, व्यक्ति एक ऐसा जीवन जी सकता है जो संतुलित, आनन्दमय और कल्याणकारी हो। आज जब जीवनशैली में असंतुलन, तनाव और अव्यवस्था सामान्य हो गए हैं, तब ये प्राचीन शिक्षाएँ आधुनिक स्वास्थ्य प्रणाली को दिशा देने वाली अमूल्य प्रेरणा बन सकती हैं। यह समग्र दृष्टिकोण हमें यह स्मरण कराता है कि स्वास्थ्य केवल शरीर तक सीमित नहीं है, अपितु मन और आत्मा को भी समाहित करता है, और हमें एक अधिक सामंजस्यपूर्ण एवं पूर्ण जीवन की ओर अग्रसर करता है।

2. मानव प्रयत्नों का मूलाधार – स्वास्थ्य

भारतीय दर्शन की महान परंपरा में आनन्द – अर्थात् सुख और पूर्णता की प्राप्ति – को कभी भी स्वास्थ्य से पृथक नहीं माना गया। प्रारंभिक वैदिक ऋचाओं से लेकर आयुर्वेद के ग्रंथों तक, भारत के ऋषियों ने यह स्पष्ट रूप से समझ लिया था कि एक स्वस्थ शरीर और मन ही सभी मानवीय प्रयत्नों की अनिवार्य नींव हैं। पुरुषार्थों – अर्थात् जीवन के चार प्रमुख प्रयोजन – का सिद्धांत इस समरसता को भलीभांति दर्शाता है:

- धर्म (नैतिक आचरण, कर्तव्य और धर्माचरण)
- अर्थ (धन, समृद्धि और आर्थिक कल्याण)
- काम (इच्छाओं की पूर्ति एवं भावनात्मक संतोष)
- मोक्ष (सांसारिक बंधनों से मुक्ति)

यदि शरीर और मन स्वस्थ न हो (आरोग्य न हो), तो इनमें से कोई भी प्रयोजन पूर्ण रूप से सिद्ध नहीं किया जा सकता। जैसा कि महान आयुर्वेदाचार्य चरक ने चरक संहिता (सूत्रस्थान 1.15) में कहा है—

“धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।”

(धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष – इन सभी का सर्वोत्तम मूलाधार आरोग्य है।)

यह सनातन सत्य इस बात को रेखांकित करता है कि स्वास्थ्य केवल रोगों की अनुपस्थिति नहीं, अपितु एक ऐसा संतुलित एवं समरस अस्तित्व है, जो जीवन के प्रत्येक पक्ष की पूर्ति के लिए आवश्यक है।

3. वैयक्तिक स्वास्थ्य की अवधारणा – कालातीत बौद्धिक दृष्टि

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान, विशेषतः ऐलोपैथी, में स्वास्थ्य को प्रायः कुछ औसत भौतिक मापदण्डों द्वारा परिभाषित किया जाता है – जैसे सामान्य रक्तचाप, आदर्श वजन, नाड़ीगति, कोलेस्ट्रॉल इत्यादि। ये मानक उपयोगी अवश्य हैं, किंतु वे उस मूल सत्य की उपेक्षा करते हैं जिसे प्राचीन भारतीय मनीषियों ने गहराई से जाना था – कि प्रत्येक व्यक्ति भिन्न है।

आयुर्वेद के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति की एक विशिष्ट प्रकृति होती है, जो तीन मूलभूत जैविक शक्तियों – वात, पित्त और कफ – के समन्वय से निर्मित होती है। यह व्यक्तिगत स्वास्थ्य-दृष्टिकोण चरक संहिता (सूत्रस्थान 1.57) के निम्नलिखित श्लोक में स्पष्ट रूप से प्रतिपादित है:

“वायुपित्तकफाः दोषाः शरीरस्थाः प्रधारिणः।”

(वायु, पित्त और कफ – ये तीन दोष शरीर में विद्यमान मुख्य नियंत्रक तत्व हैं।)

यह सिद्धांत इस बात को प्रतिपादित करता है कि वास्तविक स्वास्थ्य वह है जो व्यक्ति की प्रकृति के अनुरूप संतुलन में स्थित हो – और यही आयुर्वेद की कालातीत और विशिष्ट बौद्धिक देन है।

इसका तात्पर्य यह है कि जो एक व्यक्ति के लिए हितकारी है, वही दूसरे के लिए हानिकारक भी हो सकता है – यह दर्शन आज की आधुनिक व्यक्तिगत और जीनोमिक्स की अवधारणाओं से हजारों वर्ष पूर्व भारतीय मनीषा में विद्यमान था।

व्यक्तिगत चिकित्सा के बारे में विश्व की सर्वप्रथम लिखित अवधारणायें पश्चिम से नहीं, अपितु भारत के आयुर्वेदिक ग्रंथों से प्राप्त होती हैं, जो लगभग 1000 ईसा पूर्व रचित हुए थे। हिप्पोक्रेटीस ने काफी बाद में इस विषय पर प्राचीन यूनान में अपने विचार प्रस्तुत किए।

भारतीय ज्ञान परंपरा ने सदा से शरीर और मन (मनस्) को अविभाज्य माना है। यजुर्वेद में कहा गया है:

“मनसि शुद्धे सुकृतं भवति।”

(जब मन शुद्ध होता है, तभी शुभ कर्म संभव होता है।)

इस प्रकार, मानसिक कल्याण को दोषों के संतुलन और समग्र स्वास्थ्य के लिए अनिवार्य माना गया है।

चिंता, शोक और भय जैसे मानसिक विकारों को रोग के प्रमुख कारणों में गिना गया है, जैसा कि चरक संहिता और सुश्रुत संहिता में विस्तारपूर्वक वर्णित है।

तालिका: आधुनिक भ्रांतियाँ बनाम प्राचीन दृष्टि : मात्राओं से परे स्वास्थ्य की संकल्पना

पहलू	आधुनिक (एलोपैथिक) दृष्टिकोण	प्राचीन भारतीय दृष्टिकोण
स्वास्थ्य की परिभाषा	रोग की अनुपस्थिति, सामान्य मापदण्ड (बी.पी., बी.एम.आई.)	शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक संतुलन की सकारात्मक अवस्था
व्यक्तिगत भिन्नता	न्यून ध्यान	मूलभूत सिद्धांत (प्रकृति-आधारित निदान)
शरीर-मन का संबंध	उभरती हुई अवधारणा	रोग एवं स्वास्थ्य की समझ का केंद्रीय आधार
रोग-निवारक दृष्टिकोण	द्वितीयक (टीकाकरण, जाँच आदि)	प्राथमिक (दिनचर्या, आहार, योग, ध्यान)
अंतिम लक्ष्य	जीवनरक्षा एवं दीर्घायु	शुद्धि, सामंजस्य एवं आध्यात्मिक उत्कर्ष

4. आयुर्वेद की शाश्वत प्रासंगिकता

“समग्र स्वास्थ्य” या “व्यक्तिगत चिकित्सा” जैसे शब्द प्रचलन में आने से हजारों वर्ष पूर्व, भारत के ऋषियों – चरक, सुश्रुत, तथा वेदों के प्रणेताओं – ने पहले ही एक ऐसी व्यापक स्वास्थ्य-दृष्टि को प्रतिपादित कर दिया था, जो प्रत्येक व्यक्ति की विशिष्टता और शरीर, मन तथा आत्मा की अभिन्न एकता पर आधारित थी।

“स्वस्थस्य स्वास्थ्य रक्षणं, आतुरस्य विकार प्रशमनं च।”

(स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा करना तथा रोगी के विकारों का शमन करना ही आयुर्वेद का उद्देश्य है।)

यह मूल सिद्धांत प्राचीन काल की भाँति आज भी उतना ही महत्वपूर्ण और प्रासंगिक है, जितना तब था।



पुरुषार्थों का सिद्धांत-जीवन के चार मौलिक उद्देश्य

5. आयुर्वेद की उत्पत्ति और ग्रंथ परंपरा

आयुर्वेद की जड़ें चारों वेदों में निहित हैं, और इसके सिद्धांतों को विस्तारपूर्वक जिन प्रमुख ग्रंथों में प्रतिपादित किया गया है, वे हैं – चरक संहिता, सुश्रुत संहिता, एवं अष्टाङ्ग हृदयम्। इन मूल ग्रंथों के पूरक रूप में समयान्तर में माधव निदान, शार्ङ्गधर संहिता, तथा भावप्रकाश निघण्टु जैसे ग्रंथों की रचना हुई, जिन्हें सामूहिक रूप से “लघु त्रयी” कहा जाता है।

ये सभी ग्रंथ स्वास्थ्य, रोग-निदान, शरीर-रचना (शरीर-शास्त्र), शरीर क्रिया (स्वस्थवृत्त), तथा औषधीय वनस्पतियों आदि पर विस्तृत वर्णन प्रस्तुत करते हैं, और इस प्रकार स्वास्थ्य की रक्षा एवं रोगों के उपचार के लिए एक समग्र दिशासूचक की भूमिका निभाते हैं।

तालिका: बृहत् त्रयी एवं अन्य आयुर्वेदिक प्राचीन ग्रंथ

ग्रंथ	प्रणेता	मुख्य क्षेत्र	प्रमुख विषयवस्तु	विशिष्टताएँ / तथ्य
चरक संहिता	महर्षि चरक (दृढबल द्वारा परिष्कृत)	कायचिकित्सा (आन्तरिक चिकित्सा)	रोगों के कारण, लक्षण, निदान एवं चिकित्सा सिद्धांत	रोग-निवारण, चिकित्सक के आचार और मानसिक स्वास्थ्य पर प्रथम विस्तृत विवेचन
सुश्रुत संहिता	महर्षि सुश्रुत	शल्यतंत्र (शल्य चिकित्सा)	300 से अधिक शल्य क्रियाएँ, 120 शल्य उपकरण, विस्तृत शल्यविधियाँ	विश्व का प्राचीनतम शल्य-ग्रंथ; पाश्चात्य शल्यचिकित्सा से सहस्राब्दियों पूर्व की रचना
अष्टाङ्ग हृदयम्	वाग्भट	चरक व सुश्रुत का समन्वित ग्रंथ	आयुर्वेद के आठ अंग – कायचिकित्सा, शल्य, बालरोग, रसायन आदि	संक्षिप्त एवं व्यावहारिक रूप में चरक व सुश्रुत की शिक्षाओं का संश्लेष
माधव निदान	माधवकर	रोग निदान (रोगनिदान तंत्र)	रोगों के कारण, लक्षण एवं विभेदात्मक निदान	मध्यकालीन महत्वपूर्ण निदान-ग्रंथ; रोगों की पहचान में व्यापक रूप से प्रयुक्त
भेल संहिता	महर्षि भेल	सामान्य आयुर्वेद	चरक संहिता से समान चर्चाएँ; कुछ विशिष्ट उपचार सिद्धांत	संभवतः चरक संहिता से भी प्राचीन; दक्षिण भारत में खंडित पाण्डुलिपियाँ प्राप्त
कश्यप संहिता	महर्षि कश्यप	कौमारभृत्य (बालरोग) एवं स्त्रीरोग	बाल-पालन, प्रसूति, मातृ स्वास्थ्य, दुग्धपान, शिशु रोग	बाल व स्त्री स्वास्थ्य पर केंद्रित विशिष्ट प्राचीन ग्रंथ

5.1 दार्शनिक आधार

आयुर्वेद की बौद्धिक नींव प्राचीन भारतीय दर्शन की दो प्रमुख दर्शनों – वैशेषिक और सांख्य – पर आधारित है। सांख्य दर्शन के अनुसार, 24 तत्त्वों की प्रणाली द्वारा मानव शरीर तथा मन की संरचना को समझा जाता है, जो शरीर रचना (शरीरशास्त्र) और मनोविज्ञान की आयुर्वेदिक अवधारणाओं का मूल आधार प्रदान करता है। दूसरी ओर वैशेषिक दर्शन संपूर्ण जगत को छह या नौ पदार्थों (पदार्थों) की श्रेणियों में वर्गीकृत करता है, जिनमें चेतन (चेतन द्रव्य) एवं अचेतन (अचेतन द्रव्य) दोनों प्रकार के तत्त्व सम्मिलित हैं। ये दार्शनिक सिद्धांत आयुर्वेदाचार्यों को प्रत्येक व्यक्ति की विशिष्ट प्रकृति के अनुसार रोगों के निदान एवं उपचार की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करते हैं, जिससे चिकित्सा एवं समग्र, व्यक्तिनिष्ठ और संतुलित स्वरूप ग्रहण करती है।

6. आयुर्वेद में स्वास्थ्य की परिभाषा

आयुर्वेद स्वास्थ्य की एक समग्र एवं व्यापक परिभाषा प्रस्तुत करता है। प्राचीन आचार्य सुश्रुत के अनुसार—

समदोषः समाग्निश्च समधातु-मलक्रियाः ।

प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

(सुश्रुत संहिता, सूत्रस्थान 15.41)

“पूर्ण स्वास्थ्य वह स्थिति है, जहाँ दोष (वात, पित्त, कफ), जठराग्नि, धातु एवं मल की क्रियाएँ संतुलित हों, तथा आत्मा, इन्द्रियाँ और मन प्रसन्न अवस्था में स्थित हों।”

इस परिभाषा में स्वास्थ्य के दो प्रमुख पहलू वर्णित हैं—

1. **शारीरिक संतुलन:** स्वास्थ्य तब प्राप्त होता है जब तीन जैविक द्रव्य (दोष), पाचन अग्नि, शरीर की ऊतक (धातु), और मल (वेस्ट उत्पाद) संतुलन में होते हैं।
2. **मानसिक और आत्मिक सामंजस्य:** वास्तविक स्वास्थ्य के लिए मन (मानस), इंद्रियों (इंद्रिय) में स्पष्टता, और आत्मा (आत्मन) से संबंध में संतोष की स्थिति भी आवश्यक है।

यह दृष्टिकोण शारीरिक, मानसिक, और आत्मिक कल्याण के एकीकरण पर बल देता है, जिससे यह पश्चिमी स्वास्थ्य की प्रारंभिक परिभाषाओं से कहीं अधिक व्यापक है, जो केवल शरीर की कार्यक्षमता पर केंद्रित थीं।

7. स्वास्थ्य के लिए व्यक्तिगत दृष्टिकोण

आधुनिक चिकित्सा प्रणालियों में जहाँ रक्तचाप, नाड़ी गति आदि सामान्य मापदण्डों पर स्वास्थ्य का मूल्यांकन किया जाता है, वहीं आयुर्वेद प्रत्येक व्यक्ति के स्वास्थ्य को एक विशिष्ट एवं व्यक्तिगत अवस्था के रूप में देखता है। यह प्राचीन विज्ञान व्यक्ति की जन्मजात प्रकृति, दैनिक आचार-व्यवहार, आहार, एवं पर्यावरणीय परिस्थितियों को स्वास्थ्य निर्धारण में अत्यंत महत्वपूर्ण मानता है। इस वैयक्तिक दृष्टिकोण का मूल आधार है त्रिदोष सिद्धांत, जिसमें तीन दोष – वात (वायु व आकाश से सम्बद्ध), पित्त (अग्नि व जल से सम्बद्ध), एवं कफ (जल व पृथ्वी से सम्बद्ध) – शरीर की संरचना एवं उसकी कार्यप्रणाली को नियंत्रित करते हैं। जब इन दोषों में असंतुलन या विकृति उत्पन्न होती है, तभी रोग उत्पन्न होता है। अतः आयुर्वेद में उपचार का लक्ष्य इन दोषों के संतुलन की पुनः स्थापना होता है, जो ऐसे गुणों वाले पदार्थों या चिकित्सा-पद्धतियों द्वारा किया जाता है, जो असंतुलन उत्पन्न करने वाले दोष के विपरीत गुणधर्म वाले हों। उदाहरणस्वरूप, यदि वात दोष की अधिकता हो जाती है – जिससे शरीर में रूक्षता (शुष्कता) और शीतलता बढ़ जाती है – तो उपचार में स्निग्ध (तेलयुक्त) एवं उष्ण (गर्म) गुणों वाले उपाय अपनाए जाते हैं, ताकि दोष का संतुलन स्थापित हो सके।

जैसा कि चरक संहिता में कहा गया है:

“वायुपित्तकफाः दोषाः शरीरस्थाः प्रधारणाः ।”

(वायु, पित्त और कफ – ये दोष शरीर की संरचना और क्रियाशीलता के मूल आधार हैं।)

– चरक संहिता, सूत्रस्थान 1.57

[स्रोत: शर्मा, आर. के., एवं डैश, बी. (2003). चरक संहिता (खंड 1-4), वाराणसी: चौखम्भा संस्कृत सीरीज.]

8. रोग : आंतरिक समरसता का विघटन

आयुर्वेद के अनुसार, रोग (विकार) शरीर पर बाहरी आक्रमण की भाँति अचानक नहीं होता, बल्कि यह शरीर में विद्यमान त्रिदोषों (वात, पित्त, कफ) के बीच विद्यमान प्राकृतिक साम्य (संतुलन) के बिगड़ने का परिणाम होता है। जब यह संतुलन अयुक्त आहार (अनुचित भोजन), विहार (जीवनशैली), मानसिक भावनाएँ (मनःस्थिति), अथवा काल (पर्यावरणीय परिवर्तन) के कारण नष्ट हो जाता है, तब रोग उत्पन्न होते हैं।

उदाहरणस्वरूप, वात दोष की वृद्धि, जो स्वाभाविक रूप से रूक्ष (शुष्क) और शीतल गुणों से युक्त होता है, संधियों में पीड़ा, कब्ज, अथवा चिंता जैसे विकार उत्पन्न कर सकता है। आयुर्वेद ऐसे दोषों को विपरीत गुणों (प्रतिलोम गुण) द्वारा संतुलित करने की पद्धति अपनाता है। जैसे – उष्ण (गर्म), स्निग्ध (तेलयुक्त), तथा स्थिरता देने वाले उपचार, जैसे तिल के तेल से अभ्यंग (मालिश), गर्म सूप आदि का प्रयोग किया जाता है।

[स्रोत : Lad, V. (2002). Textbook of Ayurveda: Fundamental Principles (Vol. 1). Albuquerque: The Ayurvedic Press].

9. आयुर्वेद और आधुनिक दृष्टिकोण

पश्चिमी चिकित्सा पद्धति में स्वास्थ्य की परिभाषा परंपरागत रूप से शरीर की कार्यक्षमता पर केंद्रित रही है, तथा रोग की स्थिति में केवल शारीरिक सामान्यता की पुनः स्थापना को ही प्रमुख उद्देश्य माना गया। किन्तु वर्ष 1948 में विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) ने स्वास्थ्य की परिभाषा को विस्तृत करते हुए इसमें मानसिक कल्याण को भी सम्मिलित किया, जो कि आयुर्वेद की सदियों पुरानी समग्र (समाहित) स्वास्थ्य-दृष्टि के अधिक समीप है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) ने आयुर्वेद को औपचारिक रूप से पारंपरिक चिकित्सा प्रणाली के रूप में मान्यता दी है, और इसे राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रमों में सम्मिलित करने हेतु प्रोत्साहित किया है। इसके लिए WHO का वैश्विक पारंपरिक चिकित्सा केन्द्र वर्ष 2022 में भारत के जामनगर (गुजरात) में स्थापित किया गया।

WHO का कथन है—

“आयुर्वेद समग्र रूप से निवारक एवं चिकित्सीय उपाय प्रदान करता है, जो शारीरिक, मानसिक और सामाजिक कल्याण को संबोधित करता है।”

10. स्वास्थ्य के शारीरिक पहलू

आयुर्वेद में मानव शरीर को केवल मांस और हड्डियों का संयोजन नहीं माना गया है, बल्कि उसे एक ऐसा जीवंत तंत्र माना गया है जो तीन मूल स्तंभों द्वारा संचालित होता है – धातु (उत्तक), दोष (जैविक ऊर्जा), एवं मल (अपशिष्ट पदार्थ)। इन तीनों का समुचित संतुलन शरीर की कार्यक्षमता और स्वास्थ्य को बनाए रखने में अत्यंत आवश्यक होता है। त्रिदोष – वात, पित्त और कफ, समस्त शारीरिक एवं मानसिक प्रक्रियाओं को नियंत्रित करते हैं।



WHO Traditional Medicine Strategy 2014–2023

WHO पारंपरिक चिकित्सा हेतु वैश्विक केंद्र: वैश्विक स्वास्थ्य का एक नया अध्याय

अप्रैल 2022 में, विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) ने भारत सरकार के सहयोग से गुजरात के जामनगर में पारंपरिक चिकित्सा हेतु वैश्विक केंद्र की स्थापना की — जो पारंपरिक चिकित्सा विज्ञानों, विशेषतः आयुर्वेद की वैश्विक स्वीकृति की दिशा में एक ऐतिहासिक उपलब्धि है। इस अद्वितीय केंद्र की आधारशिला भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी तथा WHO के महानिदेशक डॉ. टेड्रॉस अधानोम गेब्रेयेसुस द्वारा संयुक्त रूप से रखी गई। डॉ. टेड्रॉस ने आयुर्वेद एवं अन्य पारंपरिक चिकित्सा प्रणालियों की व्यापक संभावनाओं को स्वीकार किया, विशेषतः समग्र एवं सतत् स्वास्थ्य देखभाल के क्षेत्र में बढ़ती वैश्विक माँग के संदर्भ में।

यह केंद्र पारंपरिक चिकित्सा अनुसंधान, नीतिनिर्माण एवं मानकीकरण हेतु एक अंतरराष्ट्रीय केंद्र के रूप में कार्य करेगा। इसका उद्देश्य प्राचीन ज्ञान और आधुनिक विज्ञान के बीच की दूरी को पाटना है। इसके अतिरिक्त, यह केंद्र वैश्विक नेतृत्व, नियामक ढाँचों का विकास, सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणालियों में पारंपरिक चिकित्सा को एकीकृत करना, तथा पारंपरिक चिकित्सा ज्ञान के डिजिटल भंडार का निर्माण भी करेगा। जामनगर का चयन प्रतीकात्मक है, क्योंकि यह प्रतिष्ठित आयुर्वेद शिक्षण एवं अनुसंधान संस्थान (ITRA) का गृहस्थान है, जिससे यह और अधिक स्पष्ट होता है कि भारत इस अमूल्य विज्ञान का वैश्विक संरक्षक है।

स्रोत: विश्व स्वास्थ्य संगठन (2022)। भारत में WHO पारंपरिक चिकित्सा वैश्विक केंद्र का उद्घाटन। <https://www.who.int>

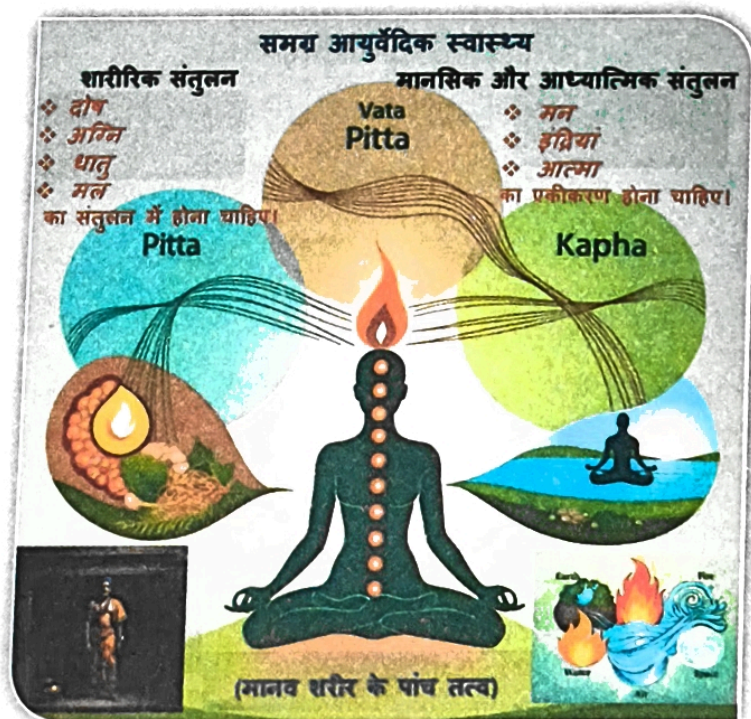
प्रेस सूचना ब्यूरो, भारत सरकार (2022)। प्रधानमंत्री ने WHO-GCTM की आधारशिला रखी। <https://pib.gov.in>

आयुष मंत्रालय, भारत सरकार (2022)। WHO GCTM के बारे में। <https://gctm.nhp.gov.in>

सप्त धातुएँ – रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र, शरीर की संरचना को आधार प्रदान करती हैं और पोषण करती हैं। त्रिमल – मूत्र, पुरिष (विष्ठा), और स्वेद (पसीना) – इनका उचित निष्कासन आंतरिक शुद्धता बनाए रखने के लिए अनिवार्य माना गया है। इस प्रकार, आयुर्वेद शरीर को एक संतुलित, जीवंत एवं समग्र प्रणाली के रूप में देखता है, न कि केवल भौतिक घटकों के जोड़ के रूप में।

11. अग्नि की भूमिका

यद्यपि अग्नि को रूपक रूप में “अग्नि” अर्थात् ज्वाला कहा गया है, किंतु यह शरीर में कोई वास्तविक लौ नहीं है, बल्कि एक तरल स्वरूप में विद्यमान जैविक अग्नि है, जो विशेष रूप से पित्त दोष से संबंधित होती है। इसका मुख्य कार्य अन्न को पचाकर उसे जीवनोपयोगी तत्वों में रूपांतरित करना है। यदि आहार अल्प, असमय अथवा अशुद्ध हो, तो यह अग्नि दोषों (वात, पित्त, कफ), धातुओं (रस, रक्त आदि), एवं अंततः शरीर की प्राणशक्ति को ही भस्म करने लगती है, जिससे शरीर में असंतुलन उत्पन्न होता है और रोग जन्म लेते हैं। अतः, अग्नि का संतुलित रहना समग्र स्वास्थ्य के लिए अत्यंत आवश्यक है। आयुर्वेद शास्त्र में अग्नि को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। केवल भोजन पचाने के कार्य तक सीमित न रहकर, अग्नि शरीर में होने वाले सभी रूपांतरण प्रक्रियाओं – जैसे भोजन का पाचन, पोषक तत्वों का अवशोषण, यहाँ तक कि ज्ञान की आत्मसात प्रक्रिया तक – की मुख्य प्रेरक शक्ति है।



मानव शरीर की संरचना

चरक संहिता (सूत्रस्थान 28.4) में स्पष्ट रूप से कहा गया है –

“शरीरस्य मनसश्च रोगः स्वास्थ्यं च अग्निप्रवृत्तौ स्थितम्।”

अर्थात् – शरीर और मन के स्वास्थ्य अथवा रोग की स्थिति पूर्णतः अग्नि की अवस्था पर निर्भर करती है।

वेदान्त साहित्य, जैसे ब्रह्मसूत्र, में अग्नि को केवल पाचनशक्ति नहीं, बल्कि जीवन का प्रतीक माना गया है। जब तक शरीर में अग्नि विद्यमान है, तब तक जीवन चलता है; अग्नि के शांत होते ही प्राण भी समाप्त हो जाते हैं। यह गूढ़ अवधारणा शब्दकल्पद्रुम और वेदान्त सूत्रों जैसे प्राचीन ग्रंथों में अत्यंत सुंदर रूप से व्याख्यायित की गई है, जहाँ आदि शंकराचार्य अग्नि को एक जीवनदायिनी, सर्वव्यापी शक्ति के रूप में वर्णित करते हैं, जो विकास, चेतना और जीवन ऊर्जा को संचालित करती है। इस प्रकार, आयुर्वेद में अग्नि केवल पाचन का नहीं, बल्कि जीवन के समस्त स्तरों पर संतुलन और जागरूकता का आधार है।

11.1 अग्नि –यास्क एवं शंकराचार्य द्वारा व्युत्पत्ति

प्राचीन वैदिक व्याकरणाचार्य यास्क ने “अग्नि” शब्द की अत्यंत सुंदर व्युत्पत्ति प्रस्तुत की है, जिसमें इसके मूल धात्वार्थों के आधार पर अग्नि के गुणों को स्पष्ट किया गया है –

- ‘अ’ – धातु “इ” (गमन) से निकला है, जिसका अर्थ है चलना या गमनशीलता।
- ‘ग्’ – धातु “अज्ज्” (प्रकाश करना) या “दह्” (जलाना) से, जिसका आशय है प्रकाश और ऊष्मा।
- ‘नि’ – धातु “नी” से, जिसका अर्थ है ले जाना, गति देना या प्रवृत्त करना।

इन तीनों को मिलाकर “अग्नि” का अर्थ बनता है –

“वह जो चलता है, प्रकाशित करता है, जलाता है, रूपांतरित करता है और जीवन को आगे बढ़ाता है।” अतः अग्नि कोई स्थिर तत्व नहीं है, अपितु यह एक सक्रिय, गतिशील, रूपांतरकारी शक्ति है। यह शरीर में प्रवाहित होती है, ऊर्जा के रूप में प्रकाशमान होती

11.2 अग्नि के प्रकार एवं उनके कार्य

आयुर्वेद में अग्नि को उसके स्थान और कर्तव्यों के आधार पर 13 प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है –

1. जाठराग्नि (Jātharāgni):

यह अग्नि अमाशय एवं ग्रहणी (छोटी आँत) में स्थित होती है। यही मुख्य पाचन अग्नि है, जो भोजन को पचाकर उसे पोषक तत्वों और अपशिष्टों में परिवर्तित करती है। जब जाठराग्नि बलवान होती है, तब पाचन ठीक प्रकार से होता है। इसके दुर्बल या विकृत होने पर रोग उत्पन्न होते हैं।

2. भूताग्नि (Bhūtāgni) – पाँच प्रकार

ये अग्नियाँ भोजन में विद्यमान पंचमहाभूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) को पचाती हैं तथा उन्हें शरीर की धातुओं में सम्यक् रूप से आत्मसात् कराती हैं।

3. धात्वग्नि (Dhātvagni) – सात प्रकार

प्रत्येक धातु – रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र – की अपनी विशेष अग्नि होती है, जो भोजन से प्राप्त पोषण को उस धातु में रूपांतरित करने का कार्य करती है। यह प्रक्रिया उचित पोषण एवं विकास सुनिश्चित करती है।

स्रोत: Agrawal AK, Yadav CR, Meena MS. Physiological aspects of Agni. Ayu. 2010 Jul;31(3):395–398.

11.3 अग्नि के मूलभूत कार्य

1. **पाचन एवं चयापचय (Āhāra Pāka):** अग्नि भोजन को पचाकर उपयोगी पोषक तत्वों एवं अपशिष्ट पदार्थों में विभाजित करती है। यह प्रक्रिया जीवन एवं ऊर्जा की निरंतरता के लिए अनिवार्य है।
2. **धातु पोषण (Dhātu Pāka):** अग्नि की सम्यक् क्रिया यह सुनिश्चित करती है कि प्रत्येक धातु को उचित पोषण प्राप्त हो तथा वह क्रमशः अगले धातु में सम्यक् रूप से परिवर्तित हो।
3. **ओजस निर्माण (Ojas Production):** सशक्त अग्नि से ओजस की उत्पत्ति

होती है, जो शरीर की प्रतिरक्षा, बल एवं जीवनशक्ति का सार है। यह रोगों से शरीर की रक्षा करता है।

4. **मानसिक स्पष्टता एवं अनुभव (Manas Pāka):** अग्नि इंद्रियों के बोध, विचारों एवं अनुभूतियों के पाचन की भी जिम्मेदार होती है, जिससे मन की स्पष्टता, बुद्धि एवं धारणा शक्ति विकसित होती है।
5. **आम का निवारण (Āma Prevention):** यदि अग्नि दुर्बल हो जाए, तो अपचित एवं विषाक्त पदार्थ जिसे “आम” कहते हैं, उत्पन्न होते हैं। आयुर्वेद के अनुसार अनेक रोगों की जड़ यही आम होता है। इस प्रकार, अग्नि न केवल शारीरिक पाचन, बल्कि जीवन रक्षा, मानसिक संतुलन, रोग प्रतिरोध और स्वस्थ जीवन का मूल आधार है।

तत्र रोगाः अपि सर्वे अपि मन्देऽग्नौ जायन्ते।”

(चरक संहिता, चिकित्सास्थान 15.3)

अर्थात् – “समस्त रोगों की उत्पत्ति अग्नि के मन्द हो जाने पर होती है।”

यह वचन इस तथ्य को प्रतिपादित करता है कि अग्नि का क्षय या विकृति ही प्रायः प्रत्येक रोग का मूल कारण है। अतः आयुर्वेद में अग्नि की रक्षा एवं उसका संतुलन बनाए रखना स्वास्थ्य-रक्षण का मूल सिद्धांत माना गया है।

आयुर्वेद के अनुसार, केवल शारीरिक रोग ही नहीं, बल्कि मानसिक विकार – जैसे अवसाद, चिंता आदि – भी विकृत अग्नि से उत्पन्न हो सकते हैं, क्योंकि अपचित विषद्रव्य (आम) मन को प्रभावित करते हैं। यह विचार आज के वैज्ञानिक “गट-ब्रेन अक्ष” सिद्धांत से मेल खाता है।

11.4 जब अग्नि सम (समाग्नि) हो

- पाचन एवं पोषण प्रक्रिया उत्तम होती है।
- शरीर का भार संतुलित रहता है।
- मन निर्मल एवं स्थिर रहता है।
- रोग-प्रतिरोधक क्षमता प्रबल होती है।
- त्वचा तेजस्वी एवं कांति से युक्त होती है।

- आयु एवं जीवनी शक्ति बढ़ती है।

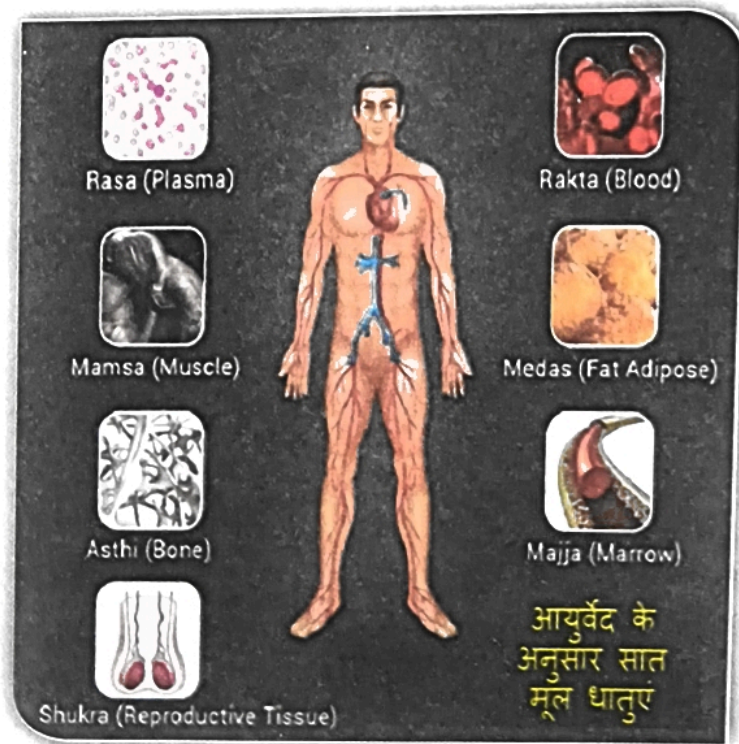
11.5 जब अग्नि विकृत हो

- मन्द अग्नि: पाचन धीमा, भारीपन, आलस्य और जड़ता
- तीक्ष्ण अग्नि: अति पाचन, अम्लपित्त (एसिडिटी), जलन एवं दाह
- विषम अग्नि: गैस, अफारा, अनियमित भूख
- सम अग्नि: आदर्श स्थिति, पूर्ण स्वास्थ्य की प्राप्ति

निष्कर्षतः, अग्नि का संतुलन ही आयुर्वेद में दीर्घायु, मानसिक स्पष्टता, एवं रोगों से मुक्ति का आधार है।

12. सात धातु

आयुर्वेदिक दर्शन में आहार को शरीर की संरचनात्मक एवं क्रियात्मक इकाइयों – जिन्हें सप्त धातु कहा जाता है – के पोषण एवं निर्माण का मूलभूत स्रोत माना गया है। शरीर इन सात मूल धातुओं से निर्मित होता है, और प्रत्येक धातु शारीरिक स्वास्थ्य बनाए रखने में एक विशिष्ट भूमिका निभाती है।



सात मूलभूत ऊतकों (धातुओं)

- **रसा (प्लाज्मा):** शरीर को पोषण और जल प्रदान करता है।
- **रक्त:** जीवन शक्ति का समर्थन करता है और ऊतकों को ऑक्सीजन प्रदान करता है।
- **मांस (मांसपेशियाँ):** संरचना और शक्ति प्रदान करता है।
- **मेदा (वसा):** ऊर्जा का भंडारण और इन्सुलेशन का कार्य करता है।
- **अस्थि (हड्डियाँ):** संरचनात्मक समर्थन और सुरक्षा प्रदान करती हैं।
- **मज्जा (हड्डी मज्जा):** रक्त कोशिकाओं का उत्पादन करती है और तंत्रिका तंत्र के कार्य को बनाए रखती है।
- **शुक्र (वीर्य):** प्रजनन सार और जीवन शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है।

आहार इन धातुओं के निर्माण का प्राथमिक स्रोत होता है। यह पहले प्लाज्मा में परिवर्तित होता है और फिर रक्त, मांस, वसा, हड्डी, हड्डी मज्जा, और अंत में शुक्र में परिवर्तित होता है। ध्यान और आध्यात्मिक अभ्यास के माध्यम से, यह सार ओजस में परिणत हो सकता है—जो जीवन शक्ति या ऊर्जा है जो रोगों से रक्षा करती है, दीर्घायु को बढ़ावा देती है, और प्रतिरक्षा को मजबूत करती है। किसी भी धातु में असंतुलन इस प्रवाह को बाधित करता है और स्वास्थ्य समस्याएँ उत्पन्न करता है।

तालिका: असंतुलित धातुओं के प्रभाव

धातु	वृद्धि या विकास	क्षय या हानि
रसा	कफ असंतुलन के समान प्रभाव	खुरदरापन, कमजोरी, सूखापन, थकान, और ध्वनियों को सहन न कर पाना
रक्त	विसर्प, प्लीहा, विद्र, कुष्ठ, उपकुष्ठ, अंगों का नुकसान, आदि	रक्त वाहिकाओं की लचीलापन की कमी, खुरदरापन
मांस	गंड, अर्बुद, ग्रंथि, गोइट्र, मम्प्स, आदि	थकान, गालों का सूखापन, जोड़ दर्द
मेदा	कमजोरी, सांस लेने में कठिनाई	स्पर्श संवेदनाओं का नुकसान, शरीर का पतलापन
अस्थि	अतिरिक्त हड्डियाँ और दांत	हड्डियों में दर्द, दांतों का गिरना
मज्जा	आँखों और शरीर में भारीपन, जोड़ दर्द	हड्डियों में छेद, चक्कर आना, अंधेरा छाना
शुक्र	अत्यधिक यौन इच्छा, वीर्य में पत्थर	शीघ्र स्खलन, अंडकोष में दर्द, और रक्त का नुकसान

12.1 धातु असंतुलन का सारांश

धातुओं में असंतुलन शरीर में विभिन्न रूपों में प्रकट होता है, जो शारीरिक और मेटाबोलिक कार्यों को प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए—

- **असंतुलित रसा:** इससे निर्जलीकरण या अत्यधिक द्रव प्रतिधारण हो सकता है।
- **असंतुलित रक्त:** यह एनीमिया या रक्त विकारों का कारण बन सकता है।
- **असंतुलित मांस:** इससे मांसपेशियों की कमजोरी या अत्यधिक वृद्धि हो सकती है।
- **असंतुलित मेदा:** यह मोटापे या ऊर्जा की कमी का कारण बन सकता है। धातुओं, दोषों, अग्नि के संतुलन को बनाए रखते हुए और मल का सही तरीके से निष्कासन सुनिश्चित करके, व्यक्ति अच्छे शारीरिक स्वास्थ्य को प्राप्त कर सकता है और कुल मिलाकर जीवन शक्ति को बढ़ा सकता है।

13. स्वास्थ्य एवं त्रिदोषों की गति-विधि

आयुर्वेद के अनुसार, स्वास्थ्य का मूल आधार तीन मूलभूत ऊर्जाओं अथवा जैव-नियामक सिद्धांतों – जिन्हें “दोष” कहा जाता है – के साम्य में निहित है: वात, पित्त और कफ। ये दोष शरीर की समस्त शारीरिक एवं मानसिक क्रियाओं को नियंत्रित करने वाली गतिशील शक्तियाँ हैं। ‘दोष’ शब्द का शाब्दिक अर्थ है – “वह जो विकृति उत्पन्न कर सकता है अथवा असंतुलित हो सकता है।” यह इस बात को इंगित करता है कि जब ये दोष असंतुलित हो जाते हैं, तब वे शरीर की स्वाभाविक अवस्था को भंग कर देते हैं और रोग उत्पन्न करते हैं।

प्रत्येक दोष का गठन पंचमहाभूतों – पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश – के विशिष्ट सम्मिश्रण से हुआ है। यह सिद्धांत भारतीय दर्शन की वैशेषिक दर्शन-परंपरा में आधारित है। उदाहरणस्वरूप, पित्त दोष का निर्माण अग्नि और जल तत्त्वों के संयोग से होता है।

13.1 त्रि-दोषों की प्रकृति और कार्य

प्रत्येक दोष का एक विशिष्ट कार्य होता है—

- कफ: शरीर की ठोस, संरचनात्मक नींव का प्रतिनिधित्व करता है।
- पित्त: रासायनिक गतिविधियों, पाचन और मेटाबोलिज्म को नियंत्रित करता है।
- वात: गति और ऊर्जा प्रवाह को नियंत्रित करता है।



त्रिदोषोपदेशः में तीन मूलभूत द्रव्यों – वात, पित्त और कफ – की मात्राओं एवं गुणों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

लाँकि इनके गुण और कार्य भिन्न होते हैं, संतुलन में होने पर ये दोष सामंजस्यपूर्ण रूप [काम करते हैं। दोषों में असंतुलन बीमारी का कारण बनता है, इसलिए उनका नियंत्रण वास्थ्य के लिए आवश्यक है।

प्रत्येक दोष की विशेषताएँ

- वात: हल्का, ठंडा, सूखा, गतिशील, सूक्ष्म, और खुरदरा।
- पित्त: तैलीय, तीव्र, गर्म, हल्का, तरल, और तीखा।
- कफ: ठंडा, नम, स्थिर, भारी, धीमा, और चिकना।

आहार और दोषों के बीच संबंध

आहार दोषों को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करता है। विशिष्ट दोष के समान गुण वाले खाद्य पदार्थ उसे बढ़ा सकते हैं। उदाहरण के लिए, भिंडी, जो कफ बढ़ाने वाली है, जब अधिक मात्रा में सेवन की जाती है, तो कफ स्तर को असंतुलित कर सकती है।

स्वाद आधारित संबंध

- वात: मीठे, खट्टे, और नम स्वादों से कम किया जाता है; तीखे, कड़वे, और कसैले स्वादों से बढ़ता है।
- पित्त: कसैले, कड़वे और मीठे स्वादों से कम किया जाता है; खट्टे, नम, और तीखे स्वादों से बढ़ता है।
- कफ: तीखे, कड़वे और कसैले स्वादों से कम किया जाता है; मीठे, खट्टे और नम स्वादों से बढ़ता है।

संतुलित आहार में सभी छह स्वादों को उचित अनुपात में शामिल किया जाना चाहिए, जो व्यक्ति की प्रकृति और वर्तमान स्वास्थ्य पर निर्भर करता है।

दोषों और शरीर में उनके स्थान

प्रत्येक दोष शरीर के विशिष्ट क्षेत्र में प्रकट होता है—

- कफ: ऊपरी शरीर, जिसमें सिर और छाती शामिल हैं।
- पित्त: छाती और नाभि के बीच।
- वात: नाभि के नीचे।

हालांकि ये क्षेत्र उनके प्राथमिक स्थानों को दर्शाते हैं, दोष शरीर के हर हिस्से में उपस्थित होते हैं और किसी भी भाग को प्रभावित कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, कफ असंतुलन आमतौर पर सर्दी या खांसी के रूप में प्रकट होता है, पित्त असंतुलन अम्लता का कारण बन सकता है, और वात असंतुलन कब्ज या गठिया का कारण बन सकता है।

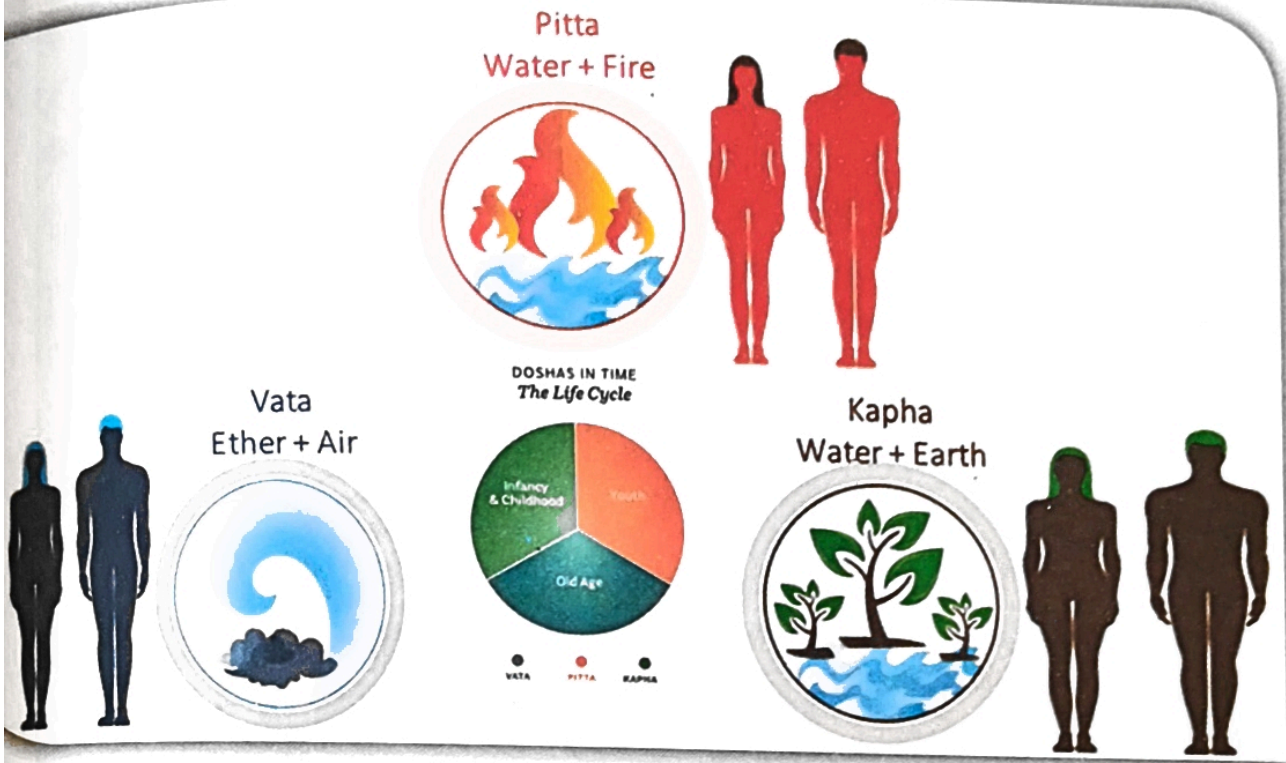
13.2 दोष और जीवन के चरण

प्रत्येक दोष का प्रभुत्व आयु, दिन के समय और रात के चरणों के अनुसार बदलता है:

- बाल्यकाल: कफ प्रबल होता है, जिससे बच्चों को सर्दी और श्वसन संबंधी समस्याओं का अधिक सामना होता है।
- मध्यम आयु: पित्त प्रबल होता है, जिससे गर्मी संबंधित बीमारियों का खतरा बढ़ता है।
- वृद्धावस्था: वात प्रबल होता है, जिससे जोड़ दर्द और पाचन समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं।

साथ ही, दोषों का प्रभाव विशिष्ट समयों के दौरान स्वास्थ्य पर पड़ता है:

- कफ: प्रातः और रात्रि के प्रारंभिक घंटे।
- पित्त: दोपहर और मध्यरात्रि।
- वात: संध्याकाल और रात के अंतिम भाग में।



त्रिदोषः स्वास्थ्य से संबंध

14. वात की भूमिका

दोषों में, वात को सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है क्योंकि इसका कार्य गति और नियंत्रण में है। यह नियंत्रित करता है:

- रक्त का परिसंचरण।
- पोषक तत्वों का परिवहन।
- श्वसन और फेफड़ों का कार्य।
- स्वैच्छिक और अनैच्छिक आंदोलनों।
- प्राकृतिक आवेगों का आरंभ, जैसे की छींकना, पेशाब, और जम्हाई लेना।
- मानसिक और संवेदी गतिविधियाँ, जैसे की भाषण।

वात में असंतुलन इन आवश्यक कार्यों में विघटन कर सकता है, जिससे विभिन्न विकार उत्पन्न हो सकते हैं।

तालिका: दोषों का संतुलन एवं उनका शरीर पर प्रभाव

स्थिति	वात	पित्त	कफ
संतुलित	ऊर्जा, संतुलित श्वास, गति, स्वाभाविक आवेग	पाचन, गर्मी, दृष्टि, भूख, प्यास, स्वाद, आभा, बुद्धिमत्ता, वीरता/नायकत्व, कोमलता, मुलायमियत	स्थिरता, नमी, अच्छे जोड़, धैर्य
अत्यधिक	पतलापन, गर्मी की आवश्यकता, कंपकंपी, कब्ज, कमजोरी, बड़बड़ाना, चक्कर आना	आंखों और उत्सर्जनों में पीलापन, अत्यधिक भूख और प्यास, जलन, अनिद्रा, अम्लता	अपाचन, मितली, आलस्य, भारीपन, शीतलता, ढीले अंग
कम	अंगों की थकावट, विषैला बोलना, चक्कर आना	अपाचन, ठंडक, आभा की कमी	चक्कर आना, कफ के स्थान में खालीपन, ढीले जोड़

14.1 प्राकृतिक और मानसिक प्रवृत्तियों का दमन

आयुर्वेद में प्राकृतिक प्रवृत्तियों का दमन शारीरिक रोगों के प्रमुख कारण के रूप में पहचाना जाता है। उदाहरण के लिए, छींकने या मूत्र त्यागने को रोकने से शारीरिक गड़बड़ियाँ हो सकती हैं।

इसके विपरीत, कुछ मानसिक प्रवृत्तियों—जैसे लालच, क्रोध, ईर्ष्या, या अत्यधिक जोश—का दमन मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के लिए किया जाता है। इन क्षेत्रों में आत्म-नियंत्रण को बढ़ावा देने से मानसिक संतुलन प्राप्त होता है, जो अंततः समग्र स्वास्थ्य का समर्थन करता है।

दोषों की प्रकृति और उनके स्वास्थ्य पर प्रभाव को समझकर, व्यक्ति संतुलन बनाए रखने और रोगों को रोकने के लिए समझदारी से आहार और जीवनशैली के चुनाव कर सकता है।

15. रोग-निदान एवं चिकित्सा की आयुर्वेदिक दृष्टि

आयुर्वेद में रोग-प्रबंधन की सफलता चार आवश्यक तत्वों पर आधारित होती है, जिनका वर्णन चरकसंहिता में किया गया है—

1. **चिकित्सक (भिषक):** चिकित्सक को रोगों का सही निदान और उपचार करने के लिए उचित प्रशिक्षण, ज्ञान और अनुभव होना चाहिए।
2. **उपचार (औषध):** उपचार सरल, सुरक्षित और प्रभावी होना चाहिए।
3. **रोगी (रोगी):** रोगी को अपनी स्थिति के बारे में पूरी जानकारी देनी चाहिए और निर्धारित उपचार का पालन करना चाहिए।
4. **सेवक (परिचारक):** सेवक को रोगी देखभाल में निपुण होना चाहिए और स्वच्छता बनाए रखनी चाहिए।

चिकित्सा के लिए आयुर्वेदिक प्रणाली में तीन मूलभूत चरण सम्मिलित होते हैं —

1. **लक्षण (लिंग):** रोग के स्पष्ट संकेतों की पहचान करना।
2. **कारण (हेतु):** लक्षणों के निहित कारणों की जांच करना।
3. **उपचार (औषध):** संतुलन बहाल करने के लिए उपयुक्त उपचार करना।

आयुर्वेद का रोगों का निदान करने का तरीका लक्षणों के बजाय उनके मूल कारणों की पहचान पर केंद्रित है, जो इसे आधुनिक चिकित्सा पद्धतियों से अलग बनाता है।

15.1 रोगनिदान की विधियाँ

आयुर्वेद में समय पर एवं सटीक रोगनिदान को अत्यधिक महत्व दिया गया है। इसके लिए विविध निदानात्मक, पूर्वानुमानात्मक तथा चिकित्सात्मक विधियों का उपयोग किया जाता है। इन सभी विधियों का विस्तृत वर्णन चरक संहिता के विमानस्थान के आठवें अध्याय में उपलब्ध है।

परीक्षण विधियाँ

1. **रोगी का परीक्षण:** यह पद्धति रोगी की प्रकृति (स्वाभाविक संरचना), शारीरिक बल तथा जीवनीशक्ति (ओज) को समझने पर केंद्रित होती है, जिसके लिए दश विधानों (दस परिमाणों) का उपयोग किया जाता है। इसमें सबसे महत्वपूर्ण है दोष-प्रकृति विश्लेषण, जिसके माध्यम से व्यक्ति को वात, पित्त, कफ या इनके संयोगात्मक प्रकारों में वर्गीकृत किया जाता है। यह विश्लेषण रोगी की शारीरिक, जैविक एवं मानसिक अवस्थाओं की गहन समझ प्रदान करता है।
 - शरीर के अनुपात का आकलन करने के लिए अंगुली के आकार (अंगुली प्रमाण) जैसे माप का उपयोग किया जाता है।
2. **रोग का परीक्षण:** यह विशिष्ट विधियाँ रोग की प्रकृति और प्रगति को समझने के लिए की जाती हैं।

मुख्य निदान विधियाँ

- **दर्शन-परीक्षा:** रोगी की उपस्थिति का दृश्य निरीक्षण, जिसमें रंग, आभा, प्रभावित क्षेत्रों का आकार और रूप शामिल है।
- **स्पर्श-परीक्षा:** स्पर्श द्वारा शारीरिक परीक्षा, जिसमें तापमान, नाड़ी, और बनावट का आकलन किया जाता है।
- **प्रश्न-परीक्षा:** रोगी या उनके देखभाल करने वालों से लक्षणों और रोगी के इतिहास के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए पूछे जाते हैं।
- **नाड़ी-परीक्षा:** नाड़ी निदान, जो मध्यकाल में प्रस्तुत किया गया था, नाड़ी के पैटर्न के माध्यम से स्वास्थ्य का आकलन करता है।
- **मूत्र-परीक्षा:** मूत्र का विश्लेषण, जिसमें तेल-बिंदु परीक्षण भी शामिल है, जो मूत्र की भौतिक और रासायनिक गुणों का मूल्यांकन करता है।
- **मल-परीक्षा:** मल का परीक्षण, जिसमें इसके पानी में व्यवहार का निरीक्षण किया जाता है, जो पाचन और चयापचय स्वास्थ्य का मूल्यांकन करने के लिए किया जाता है।

होती है, जो शरीर की प्रतिरक्षा, बल एवं जीवनशक्ति का सार है। यह रोगों से शरीर की रक्षा करता है।

4. **मानसिक स्पष्टता एवं अनुभव (Manas Pāka):** अग्नि इंद्रियों के बोध, विचारों एवं अनुभूतियों के पाचन की भी जिम्मेदार होती है, जिससे मन की स्पष्टता, बुद्धि एवं धारणा शक्ति विकसित होती है।

5. **आम का निवारण (Āma Prevention):** यदि अग्नि दुर्बल हो जाए, तो अपचित एवं विषाक्त पदार्थ जिसे “आम” कहते हैं, उत्पन्न होते हैं। आयुर्वेद के अनुसार अनेक रोगों की जड़ यही आम होता है। इस प्रकार, अग्नि न केवल शारीरिक पाचन, बल्कि जीवन रक्षा, मानसिक संतुलन, रोग प्रतिरोध और स्वस्थ जीवन का मूल आधार है।

तत्र रोगाः अपि सर्वे अपि मन्देऽग्नौ जायन्ते।”

(चरक संहिता, चिकित्सास्थान 15.3)

अर्थात् – “समस्त रोगों की उत्पत्ति अग्नि के मन्द हो जाने पर होती है।”

यह वचन इस तथ्य को प्रतिपादित करता है कि अग्नि का क्षय या विकृति ही प्रायः प्रत्येक रोग का मूल कारण है। अतः आयुर्वेद में अग्नि की रक्षा एवं उसका संतुलन बनाए रखना स्वास्थ्य-रक्षण का मूल सिद्धांत माना गया है।

आयुर्वेद के अनुसार, केवल शारीरिक रोग ही नहीं, बल्कि मानसिक विकार – जैसे अवसाद, चिंता आदि – भी विकृत अग्नि से उत्पन्न हो सकते हैं, क्योंकि अपचित विषद्रव्य (आम) मन को प्रभावित करते हैं। यह विचार आज के वैज्ञानिक “गट-ब्रेन अक्ष” सिद्धांत से मेल खाता है।

11.4 जब अग्नि सम (समाग्नि) हो

- पाचन एवं पोषण प्रक्रिया उत्तम होती है।
- शरीर का भार संतुलित रहता है।
- मन निर्मल एवं स्थिर रहता है।
- रोग-प्रतिरोधक क्षमता प्रबल होती है।
- त्वचा तेजस्वी एवं कांति से युक्त होती है।

- आयु एवं जीवनी शक्ति बढ़ती है।

11.5 जब अग्नि विकृत हो

- मन्द अग्नि: पाचन धीमा, भारीपन, आलस्य और जड़ता
- तीक्ष्ण अग्नि: अति पाचन, अम्लपित्त (एसिडिटी), जलन एवं दाह
- विषम अग्नि: गैस, अफारा, अनियमित भूख
- सम अग्नि: आदर्श स्थिति, पूर्ण स्वास्थ्य की प्राप्ति

निष्कर्षतः, अग्नि का संतुलन ही आयुर्वेद में दीर्घायु, मानसिक स्पष्टता, एवं रोगों से मुक्ति का आधार है।

12. सात धातु

आयुर्वेदिक दर्शन में आहार को शरीर की संरचनात्मक एवं क्रियात्मक इकाइयों – जिन्हें सप्त धातु कहा जाता है – के पोषण एवं निर्माण का मूलभूत स्रोत माना गया है। शरीर इन सात मूल धातुओं से निर्मित होता है, और प्रत्येक धातु शारीरिक स्वास्थ्य बनाए रखने में एक विशिष्ट भूमिका निभाती है।



- **रसा (प्लाज्मा):** शरीर को पोषण और जल प्रदान करता है।
- **रक्त:** जीवन शक्ति का समर्थन करता है और ऊतकों को ऑक्सीजन प्रदान करता है।
- **मांस (मांसपेशियाँ):** संरचना और शक्ति प्रदान करता है।
- **मेदा (वसा):** ऊर्जा का भंडारण और इन्सुलेशन का कार्य करता है।
- **अस्थि (हड्डियाँ):** संरचनात्मक समर्थन और सुरक्षा प्रदान करती हैं।
- **मज्जा (हड्डी मज्जा):** रक्त कोशिकाओं का उत्पादन करती है और तंत्रिका तंत्र के कार्य को बनाए रखती है।
- **शुक्र (वीर्य):** प्रजनन सार और जीवन शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है।

आहार इन धातुओं के निर्माण का प्राथमिक स्रोत होता है। यह पहले प्लाज्मा में परिवर्तित होता है और फिर रक्त, मांस, वसा, हड्डी, हड्डी मज्जा, और अंत में शुक्र में परिवर्तित होता है। ध्यान और आध्यात्मिक अभ्यास के माध्यम से, यह सार ओजस में परिणत हो सकता है—जो जीवन शक्ति या ऊर्जा है जो रोगों से रक्षा करती है, दीर्घायु को बढ़ावा देती है, और प्रतिरक्षा को मजबूत करती है। किसी भी धातु में असंतुलन इस प्रवाह को बाधित करता है और स्वास्थ्य समस्याएँ उत्पन्न करता है।

तालिका: असंतुलित धातुओं के प्रभाव

धातु	वृद्धि या विकास	क्षय या हानि
रसा	कफ असंतुलन के समान प्रभाव	खुरदरापन, कमजोरी, सूखापन, थकान, और ध्वनियों को सहन न कर पाना
रक्त	विसर्प, प्लीहा, विद्र, कुष्ठ, उपकुष्ठ, अंगों का नुकसान, आदि	रक्त वाहिकाओं की लचीलापन की कमी, खुरदरापन
मांस	गंड, अर्बुद, ग्रंथि, गोइट्र, मम्प्स, आदि	थकान, गालों का सूखापन, जोड़ दर्द
मेदा	कमजोरी, सांस लेने में कठिनाई	स्पर्श संवेदनाओं का नुकसान, शरीर का पतलापन
अस्थि	अतिरिक्त हड्डियाँ और दांत	हड्डियों में दर्द, दांतों का गिरना
मज्जा	आँखों और शरीर में भारीपन, जोड़ दर्द	हड्डियों में छेद, चक्कर आना, अंधेरा छाना
शुक्र	अत्यधिक यौन इच्छा, वीर्य में पत्थर	शीघ्र स्खलन, अंडकोष में दर्द, और रक्त का नुकसान

12.1 धातु असंतुलन का सारांश

धातुओं में असंतुलन शरीर में विभिन्न रूपों में प्रकट होता है, जो शारीरिक और मेटाबोलिक कार्यों को प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए—

- असंतुलित रसा: इससे निर्जलीकरण या अत्यधिक द्रव प्रतिधारण हो सकता है।
- असंतुलित रक्त: यह एनीमिया या रक्त विकारों का कारण बन सकता है।
- असंतुलित मांस: इससे मांसपेशियों की कमजोरी या अत्यधिक वृद्धि हो सकती है।
- असंतुलित मेदा: यह मोटापे या ऊर्जा की कमी का कारण बन सकता है। धातुओं, दोषों, अग्नि के संतुलन को बनाए रखते हुए और मल का सही तरीके से निष्कासन सुनिश्चित करके, व्यक्ति अच्छे शारीरिक स्वास्थ्य को प्राप्त कर सकता है और कुल मिलाकर जीवन शक्ति को बढ़ा सकता है।

13. स्वास्थ्य एवं त्रिदोषों की गति-विधि

आयुर्वेद के अनुसार, स्वास्थ्य का मूल आधार तीन मूलभूत ऊर्जाओं अथवा जैव-नियामक सिद्धांतों – जिन्हें “दोष” कहा जाता है – के साम्य में निहित है: वात, पित्त और कफ। ये दोष शरीर की समस्त शारीरिक एवं मानसिक क्रियाओं को नियंत्रित करने वाली गतिशील शक्तियाँ हैं। ‘दोष’ शब्द का शाब्दिक अर्थ है – “वह जो विकृति उत्पन्न कर सकता है अथवा असंतुलित हो सकता है।” यह इस बात को इंगित करता है कि जब ये दोष असंतुलित हो जाते हैं, तब वे शरीर की स्वाभाविक अवस्था को भंग कर देते हैं और रोग उत्पन्न करते हैं।

प्रत्येक दोष का गठन पंचमहाभूतों – पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश – के विशिष्ट सम्मिश्रण से हुआ है। यह सिद्धांत भारतीय दर्शन की वैशेषिक दर्शन-परंपरा में आधारित है। उदाहरणस्वरूप, पित्त दोष का निर्माण अग्नि और जल तत्त्वों के संयोग से होता है।

13.1 त्रि-दोषों की प्रकृति और कार्य

प्रत्येक दोष का एक विशिष्ट कार्य होता है—

- कफ: शरीर की ठोस, संरचनात्मक नींव का प्रतिनिधित्व करता है।
- पित्त: रासायनिक गतिविधियों, पाचन और मेटाबोलिज्म को नियंत्रित करता है।
- वात: गति और ऊर्जा प्रवाह को नियंत्रित करता है।



त्रिदोषोपदेशः में तीन मूलभूत द्रव्यों – वात, पित्त और कफ – की मात्राओं एवं गुणों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

हालाँकि इनके गुण और कार्य भिन्न होते हैं, संतुलन में होने पर ये दोष सामंजस्यपूर्ण रूप से काम करते हैं। दोषों में असंतुलन बीमारी का कारण बनता है, इसलिए उनका नियंत्रण स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है।

प्रत्येक दोष की विशेषताएँ

- वात: हल्का, ठंडा, सूखा, गतिशील, सूक्ष्म, और खुरदरा।
- पित्त: तैलीय, तीव्र, गर्म, हल्का, तरल, और तीखा।
- कफ: ठंडा, नम, स्थिर, भारी, धीमा, और चिकना।

आहार और दोषों के बीच संबंध

आहार दोषों को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करता है। विशिष्ट दोष के समान गुण वाले खाद्य पदार्थ उसे बढ़ा सकते हैं। उदाहरण के लिए, भिंडी, जो कफ बढ़ाने वाली है, जब अधिक मात्रा में सेवन की जाती है, तो कफ स्तर को असंतुलित कर सकती है।

स्वाद आधारित संबंध

- वात: मीठे, खट्टे, और नम स्वादों से कम किया जाता है; तीखे, कड़वे, और कसैले स्वादों से बढ़ता है।
- पित्त: कसैले, कड़वे और मीठे स्वादों से कम किया जाता है; खट्टे, नम, और तीखे स्वादों से बढ़ता है।
- कफ: तीखे, कड़वे और कसैले स्वादों से कम किया जाता है; मीठे, खट्टे और नम स्वादों से बढ़ता है।

संतुलित आहार में सभी छह स्वादों को उचित अनुपात में शामिल किया जाना चाहिए, जो व्यक्ति की प्रकृति और वर्तमान स्वास्थ्य पर निर्भर करता है।

दोषों और शरीर में उनके स्थान

प्रत्येक दोष शरीर के विशिष्ट क्षेत्र में प्रकट होता है—

- कफ: ऊपरी शरीर, जिसमें सिर और छाती शामिल हैं।
- पित्त: छाती और नाभि के बीच।
- वात: नाभि के नीचे।

हालांकि ये क्षेत्र उनके प्राथमिक स्थानों को दर्शाते हैं, दोष शरीर के हर हिस्से में उपस्थित होते हैं और किसी भी भाग को प्रभावित कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, कफ असंतुलन आमतौर पर सर्दी या खांसी के रूप में प्रकट होता है, पित्त असंतुलन अम्लता का कारण बन सकता है, और वात असंतुलन कब्ज या गठिया का कारण बन सकता है।

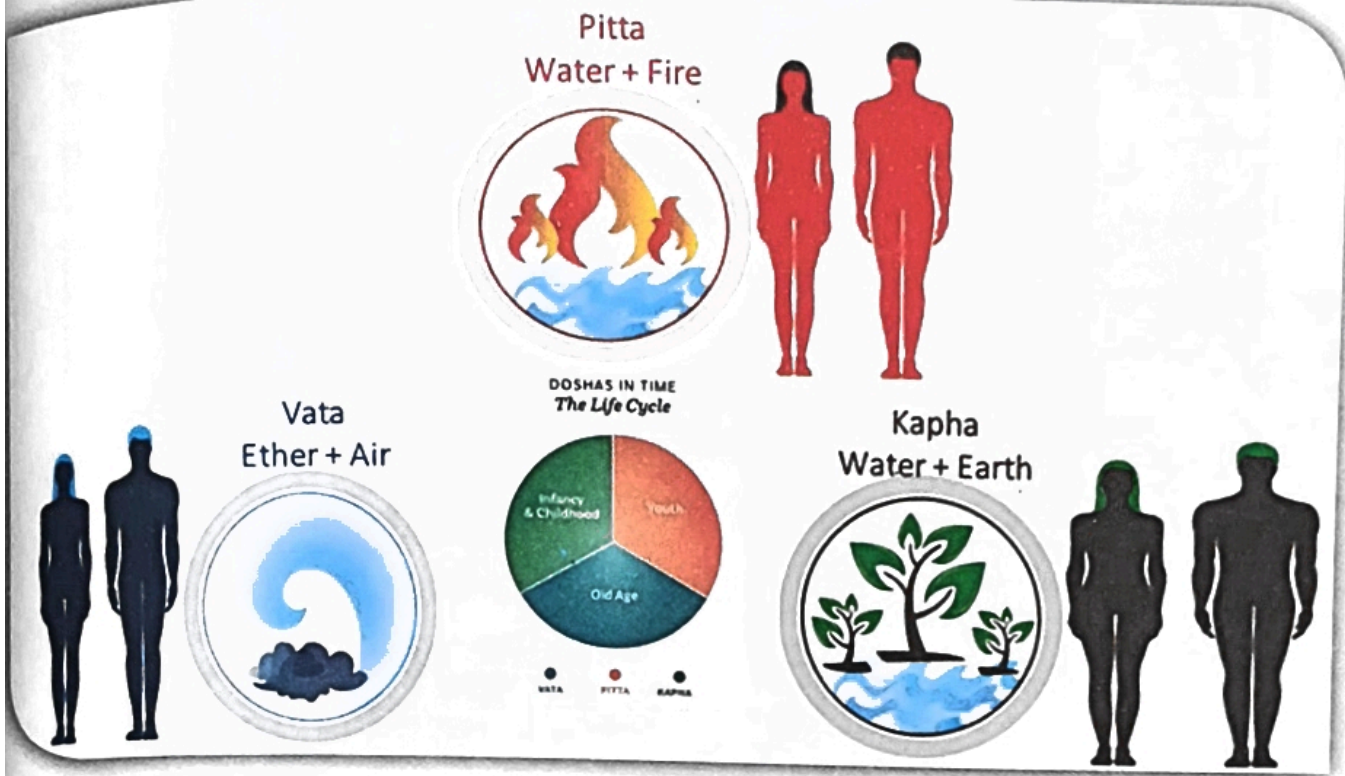
13.2 दोष और जीवन के चरण

प्रत्येक दोष का प्रभुत्व आयु, दिन के समय और रात के चरणों के अनुसार बदलता है:

- बाल्यकाल: कफ प्रबल होता है, जिससे बच्चों को सर्दी और श्वसन संबंधी समस्याओं का अधिक सामना होता है।
- मध्यम आयु: पित्त प्रबल होता है, जिससे गर्मी संबंधित बीमारियों का खतरा बढ़ता है।
- वृद्धावस्था: वात प्रबल होता है, जिससे जोड़ दर्द और पाचन समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं।

साथ ही, दोषों का प्रभाव विशिष्ट समयों के दौरान स्वास्थ्य पर पड़ता है:

- कफ: प्रातः और रात्रि के प्रारंभिक घंटे।
- पित्त: दोपहर और मध्यरात्रि।
- वात: संध्याकाल और रात के अंतिम भाग में।



त्रिदोषः स्वास्थ्य से संबंध

14. वात की भूमिका

दोषों में, वात को सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है क्योंकि इसका कार्य गति और नियंत्रण में है। यह नियंत्रित करता है:

- रक्त का परिसंचरण।
- पोषक तत्वों का परिवहन।
- श्वसन और फेफड़ों का कार्य।
- स्वैच्छिक और अनैच्छिक आंदोलनों।
- प्राकृतिक आवेगों का आरंभ, जैसे की छींकना, पेशाब, और जम्हाई लेना।
- मानसिक और संवेदी गतिविधियाँ, जैसे की भाषण।

वात में असंतुलन इन आवश्यक कार्यों में विघटन कर सकता है, जिससे विभिन्न विकार उत्पन्न हो सकते हैं।

तालिका: दोषों का संतुलन एवं उनका शरीर पर प्रभाव

स्थिति	वात	पित्त	कफ
संतुलित	ऊर्जा, संतुलित श्वास, गति, स्वाभाविक आवेग	पाचन, गर्मी, दृष्टि, भूख, प्यास, स्वाद, आभा, बुद्धिमत्ता, वीरता/नायकत्व, कोमलता, मुलायमियत	स्थिरता, नमी, अच्छे जोड़, धैर्य
अत्यधिक	पतलापन, गर्मी की आवश्यकता, कंपकंपी, कब्ज, कमजोरी, बड़बड़ाना, चक्कर आना	आंखों और उत्सर्जनों में पीलापन, अत्यधिक भूख और प्यास, जलन, अनिद्रा, अम्लता	अपाचन, मितली, आलस्य, भारीपन, शीतलता, ढीले अंग
कम	अंगों की थकावट, विषैला बोलना, चक्कर आना	अपाचन, ठंडक, आभा की कमी	चक्कर आना, कफ के स्थान में खालीपन, ढीले जोड़

14.1 प्राकृतिक और मानसिक प्रवृत्तियों का दमन

आयुर्वेद में प्राकृतिक प्रवृत्तियों का दमन शारीरिक रोगों के प्रमुख कारण के रूप में पहचाना जाता है। उदाहरण के लिए, छींकने या मूत्र त्यागने को रोकने से शारीरिक गड़बड़ियाँ हो सकती हैं।

इसके विपरीत, कुछ मानसिक प्रवृत्तियों—जैसे लालच, क्रोध, ईर्ष्या, या अत्यधिक जोश—का दमन मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के लिए किया जाता है। इन क्षेत्रों में आत्म-नियंत्रण को बढ़ावा देने से मानसिक संतुलन प्राप्त होता है, जो अंततः समग्र स्वास्थ्य का समर्थन करता है।

दोषों की प्रकृति और उनके स्वास्थ्य पर प्रभाव को समझकर, व्यक्ति संतुलन बनाए रखने और रोगों को रोकने के लिए समझदारी से आहार और जीवनशैली के चुनाव कर सकता है।

15. रोग-निदान एवं चिकित्सा की आयुर्वेदिक दृष्टि

आयुर्वेद में रोग-प्रबंधन की सफलता चार आवश्यक तत्वों पर आधारित होती है, जिनका वर्णन चरकसंहिता में किया गया है—

1. **चिकित्सक (भिषक):** चिकित्सक को रोगों का सही निदान और उपचार करने के लिए उचित प्रशिक्षण, ज्ञान और अनुभव होना चाहिए।
2. **उपचार (औषध):** उपचार सरल, सुरक्षित और प्रभावी होना चाहिए।
3. **रोगी (रोगी):** रोगी को अपनी स्थिति के बारे में पूरी जानकारी देनी चाहिए और निर्धारित उपचार का पालन करना चाहिए।
4. **सेवक (परिचारक):** सेवक को रोगी देखभाल में निपुण होना चाहिए और स्वच्छता बनाए रखनी चाहिए।

चिकित्सा के लिए आयुर्वेदिक प्रणाली में तीन मूलभूत चरण सम्मिलित होते हैं —

1. **लक्षण (लिंग):** रोग के स्पष्ट संकेतों की पहचान करना।
2. **कारण (हेतु):** लक्षणों के निहित कारणों की जांच करना।
3. **उपचार (औषध):** संतुलन बहाल करने के लिए उपयुक्त उपचार करना।

आयुर्वेद का रोगों का निदान करने का तरीका लक्षणों के बजाय उनके मूल कारणों की पहचान पर केंद्रित है, जो इसे आधुनिक चिकित्सा पद्धतियों से अलग बनाता है।

15.1 रोगनिदान की विधियाँ

आयुर्वेद में समय पर एवं सटीक रोगनिदान को अत्यधिक महत्व दिया गया है। इसके लिए विविध निदानात्मक, पूर्वानुमानात्मक तथा चिकित्सात्मक विधियों का उपयोग किया जाता है। इन सभी विधियों का विस्तृत वर्णन चरक संहिता के विमानस्थान के आठवें अध्याय में उपलब्ध है।

परीक्षण विधियाँ

1. **रोगी का परीक्षण:** यह पद्धति रोगी की प्रकृति (स्वाभाविक संरचना), शारीरिक बल तथा जीवनीशक्ति (ओज) को समझने पर केंद्रित होती है, जिसके लिए दश विधानों (दस परिमाणों) का उपयोग किया जाता है। इसमें सबसे महत्वपूर्ण है दोष-प्रकृति विश्लेषण, जिसके माध्यम से व्यक्ति को वात, पित्त, कफ या इनके संयोगात्मक प्रकारों में वर्गीकृत किया जाता है। यह विश्लेषण रोगी की शारीरिक, जैविक एवं मानसिक अवस्थाओं की गहन समझ प्रदान करता है।
 - शरीर के अनुपात का आकलन करने के लिए अंगुली के आकार (अंगुली प्रमाण) जैसे माप का उपयोग किया जाता है।
2. **रोग का परीक्षण:** यह विशिष्ट विधियाँ रोग की प्रकृति और प्रगति को समझने के लिए की जाती हैं।

मुख्य निदान विधियाँ

- **दर्शन-परीक्षा:** रोगी की उपस्थिति का दृश्य निरीक्षण, जिसमें रंग, आभा, प्रभावित क्षेत्रों का आकार और रूप शामिल है।
- **स्पर्श-परीक्षा:** स्पर्श द्वारा शारीरिक परीक्षा, जिसमें तापमान, नाड़ी, और बनावट का आकलन किया जाता है।
- **प्रश्न-परीक्षा:** रोगी या उनके देखभाल करने वालों से लक्षणों और रोगी के इतिहास के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए पूछे जाते हैं।
- **नाड़ी-परीक्षा:** नाड़ी निदान, जो मध्यकाल में प्रस्तुत किया गया था, नाड़ी के पैटर्न के माध्यम से स्वास्थ्य का आकलन करता है।
- **मूत्र-परीक्षा:** मूत्र का विश्लेषण, जिसमें तेल-बिंदु परीक्षण भी शामिल है, जो मूत्र की भौतिक और रासायनिक गुणों का मूल्यांकन करता है।
- **मल-परीक्षा:** मल का परीक्षण, जिसमें इसके पानी में व्यवहार का निरीक्षण किया जाता है, जो पाचन और चयापचय स्वास्थ्य का मूल्यांकन करने के लिए किया जाता है।

तालिका: आयुर्वेदिक ग्रंथों में वर्णित निदान तकनीकें

परीक्षण का पक्ष	तकनीक अथवा ध्यान का केंद्र	विवरण या विधि
रोगी का परीक्षण		
प्रकृति (स्वभाविक संरचना)	दर्शन-परीक्षा	दृश्य अवलोकन (निरिक्षण द्वारा)
सार (धातु की दृढ़ता)	स्पर्शन-परीक्षा	स्पर्श द्वारा परीक्षण
संहनन (अवयवों की स्थिति)	प्रश्न-परीक्षा	प्रश्न पूछकर जानकारी प्राप्त करना
प्रमाण (शरीर की माप)	नाड़ी-परीक्षा	नाड़ी के माध्यम से परीक्षण
सात्म्य (अनुकूलता)	मूत्र-परीक्षा	मूत्र का परीक्षण
सत्त्व (मानसिक स्थिति)	मल-परीक्षा	मल का परीक्षण
व्यायाम-शक्ति (शारीरिक क्षमता)	आहार-शक्ति	आहार की मात्रा एवं पाचन क्षमता का मूल्यांकन
वय (आयु)	—	रोगी की आयु का निर्धारण
रोग का परीक्षण		
विकृति (दोषजन्य विकार)	स्पर्शन-परीक्षा	स्पर्श एवं अनुभव के माध्यम से विकृति का विश्लेषण

16. स्वास्थ्य में नींद और आहार का महत्व

आयुर्वेद में आहार एवं जीवनशैली सम्बन्धी अनुशासन उपचार की मूल धारा माने जाते हैं। इन सुझावों को व्यक्ति की प्रकृति तथा विकृत दोषों के आधार पर विशेष रूप से अनुरूपित किया जाता है। स्वास्थ्य की रक्षा हेतु आयुर्वेद दैनिक (दिनचर्या) एवं ऋतु के अनुसार (ऋतुचर्या) नियमों का विधान करता है।

16.1 स्वास्थ्य के तीन स्तंभ

चरक के अनुसार, स्वास्थ्य के स्तंभ हैं:

- **आहार:** अपने दोष संविधान के अनुसार आहार।

- नींद: शरीर और मस्तिष्क को पुनर्जीवित करने के लिए उचित विश्राम।
- ब्रह्मचर्य: इन्द्रियों के भोग में संयम।

16.2 नींद की प्रकृति

नींद तब आती है जब मस्तिष्क और इन्द्रियाँ थकावट के कारण खींचती हैं। अत्यधिक तामस (जड़ता) या कफ का संचय भी नींद को प्रेरित कर सकता है। उचित नींद आवश्यक है—

- शारीरिक जीवनशक्ति के लिए।
- मानसिक स्थिरता के लिए।
- संज्ञानात्मक स्पष्टता के लिए।

नींद के छह प्रकार

1. तामो-भाव: मानसिक आलस्य से प्रेरित, जैसे भारी भोजन के बाद; नकारात्मक परिणामों से जुड़ा हुआ।
2. श्लेष्म-समुद्भव: कफ के कारण, बच्चों की लंबी नींद की अवधि को समझाता है।
3. मनो-शरीर-श्रम-समुद्भव: मानसिक और शारीरिक थकावट से उत्पन्न।
4. आगंतुक: बाहरी तत्वों जैसे खुशबू, औषधियाँ या मालिश से प्रेरित।
5. व्याधि-अनुवर्तिनी: रोगों से संबंधित, जैसे कफ से उत्पन्न बुखार।
6. रात्रि-स्वभाव-प्रभावा: प्राकृतिक रात की नींद, जिसे सबसे अच्छा और सबसे पुनरुत्थानकारी माना जाता है।

स्वस्थ नींद के लिए सुझाव

- रात्रि में निद्रा को श्रेष्ठ माना गया है, जबकि दिवा-निद्रा केवल ग्रीष्म ऋतु में ही अनुशंसित है, ताकि अल्प रात्रि एवं वातदोष की वृद्धि को संतुलित किया जा सके।
- अत्यधिक दिन में सोना कफ तथा पित्त दोषों को प्रकोपित कर सकता है।

नींद विकारों का प्रबंधन

1. अनिद्रा: सामान्य कारणों में तनाव तथा जीवनशैली संबंधी दोष प्रमुख हैं। आयुर्वेद इनमें राहत हेतु निम्नलिखित उपाय सुझाता है —

- तेल की मालिश।
 - स्नान।
 - शांति देने वाले खाद्य पदार्थ जैसे शाली चावल और दही।
 - हल्की शरीर की मालिश।
 - सुखद सुगंध और मुलायम बिस्तर से शांतिपूर्ण सोने का वातावरण बनाना।
2. अत्यधिक/अनुचित नींद: यह अक्सर कफ और पित्त असंतुलन से जुड़ा होता है। उपचारों में शामिल हैं:
- मल निकासी उपचार।
 - उपवासी रहना।
 - शारीरिक गतिविधि।
 - तामस को कम करने के लिए सचेतन अभ्यास।

आहार और जीवनशैली दोनों का ध्यान रखते हुए, आयुर्वेद रोग प्रबंधन और समग्र कल्याण के लिए एक समग्र दृष्टिकोण प्रदान करता है।

17. आयुर्वेद में रोग प्रबंधन

आयुर्वेद स्वास्थ्य के लिए एक समग्र दृष्टिकोण प्रदान करता है, जो शरीर, मस्तिष्क और आत्मा के संतुलन पर जोर देता है। इसके उपचार की नींव चार प्रमुख घटकों पर आधारित है: चिकित्सक, उपचार, रोगी और सेवक। चिकित्सक को प्रशिक्षित और अनुभवी होना चाहिए, जबकि उपचार प्रभावी, सुरक्षित और आसानी से उपलब्ध होने चाहिए। रोगी की भूमिका सटीक जानकारी प्रदान करना और निर्धारित उपचारों का पालन करना है, और सेवक रोगी की आराम और स्वच्छता बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इन तत्वों के संयोजन से एक समग्र और व्यक्तिगत उपचार प्रक्रिया सुनिश्चित होती है।

आयुर्वेद में निदान प्रक्रिया सूक्ष्म और बहुआयामी होती है, जिसमें रोगी और रोग दोनों का गहन परीक्षण शामिल होता है। रोगी की अद्वितीय प्रकृति (त्रिदोष) को उनकी व्यक्तित्व और जीवनशक्ति के माध्यम से समझना अत्यंत महत्वपूर्ण है। निदान में दृश्य परीक्षण (दर्शन-परीक्षा), शारीरिक परीक्षण (स्पर्श-परीक्षा), और पूछना (प्रश्न-परीक्षा) शामिल हैं। पारंपरिक विधियाँ जैसे नाड़ी परीक्षण, मूत्र परीक्षण, और मल परीक्षण आंतरिक असंतुलनों की जानकारी प्रदान करती हैं। यह विस्तृत निदान प्रक्रिया

चिकित्सकों को केवल लक्षणों को ही नहीं, बल्कि रोग के मूल कारणों को पहचानने में सक्षम बनाती है, जो आयुर्वेद के लक्षणों के बजाय मूल कारणों के उपचार के सिद्धांत के अनुरूप है।

आयुर्वेद में निद्रा और आहार को स्वास्थ्य के स्तंभ माना गया है। निद्रा, जो तमस और कफ दोष से प्रभावित होती है, शारीरिक और मानसिक पुनरुत्थान के लिए महत्वपूर्ण है। आयुर्वेद में निद्रा के छह प्रकार बताए गए हैं, जिनमें स्वाभाविक रात्रि निद्रा (रात्रि-स्वभाव-प्रभाव) को सबसे लाभकारी माना गया है। अनिद्रा के उपायों में तेल मालिश, विशिष्ट आहार का सेवन, और सुखद नींद वातावरण बनाए रखना शामिल है। दिन के समय सोना सामान्यतः हतोत्साहित किया गया है, लेकिन गर्मियों में या बच्चों और बुजुर्गों जैसे विशेष समूहों के लिए इसे अनुमति दी गई है। अनुचित निद्रा आदतें, चाहे वह अत्यधिक हों या अपर्याप्त, कफ और पित्त दोषों के असंतुलन से जुड़ी हुई हैं।

आहार को भी स्वास्थ्य का एक प्रमुख आधार माना गया है, जिसमें इसके गुण, मात्रा और समय पर विशेष ध्यान दिया जाता है। खाद्य पदार्थों को गुरु (भारी) और लघु (हल्के) के रूप में वर्गीकृत किया गया है, जहाँ गुरु भोजन पचने में कठिन लेकिन बलवर्धक होता है, जबकि लघु भोजन आसानी से पचने योग्य और स्वास्थ्य पुनःस्थापन में सहायक होता है। भोजन के बीच 3-6 घंटे का अंतराल आवश्यक बताया गया है ताकि पाचन प्रक्रिया सुचारू हो सके। ताजा पकाया हुआ भोजन प्राथमिकता में है, क्योंकि तीन घंटे से अधिक पुराना भोजन तामसिक माना जाता है, जो जीवनशक्ति को कम करता है और आलस्य को बढ़ावा देता है। जल को भी जीवन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है। इसका प्रकार और मात्रा व्यक्ति की प्रकृति के अनुसार होना चाहिए। आयुर्वेद में वर्षाजल (आंतरिक्ष) और भूमिगत जल (भौम) के बीच अंतर किया गया है, यह कहते हुए कि जल के गुण उसके स्रोत और ऋतु पर निर्भर करते हैं। जल केवल प्यास बुझाने का साधन नहीं है, बल्कि थकान से लेकर गुर्दे की पथरी तक कई रोगों का उपचार भी है।

1970 के दशक में, भारत सरकार ने आयुर्वेदिक ग्रंथों में दिए गए सूत्रों का मूल्यांकन करने के लिए आयुर्वेदिक विशेषज्ञों का एक पैनल नियुक्त किया। इस कार्य का परिणाम "आयुर्वेदिक फॉर्मुलरी ऑफ इंडिया" के संकलन के रूप में हुआ, जिसमें 560 से अधिक मूल्यांकित सूत्र, 22 भस्म और 55 रस शामिल हैं।

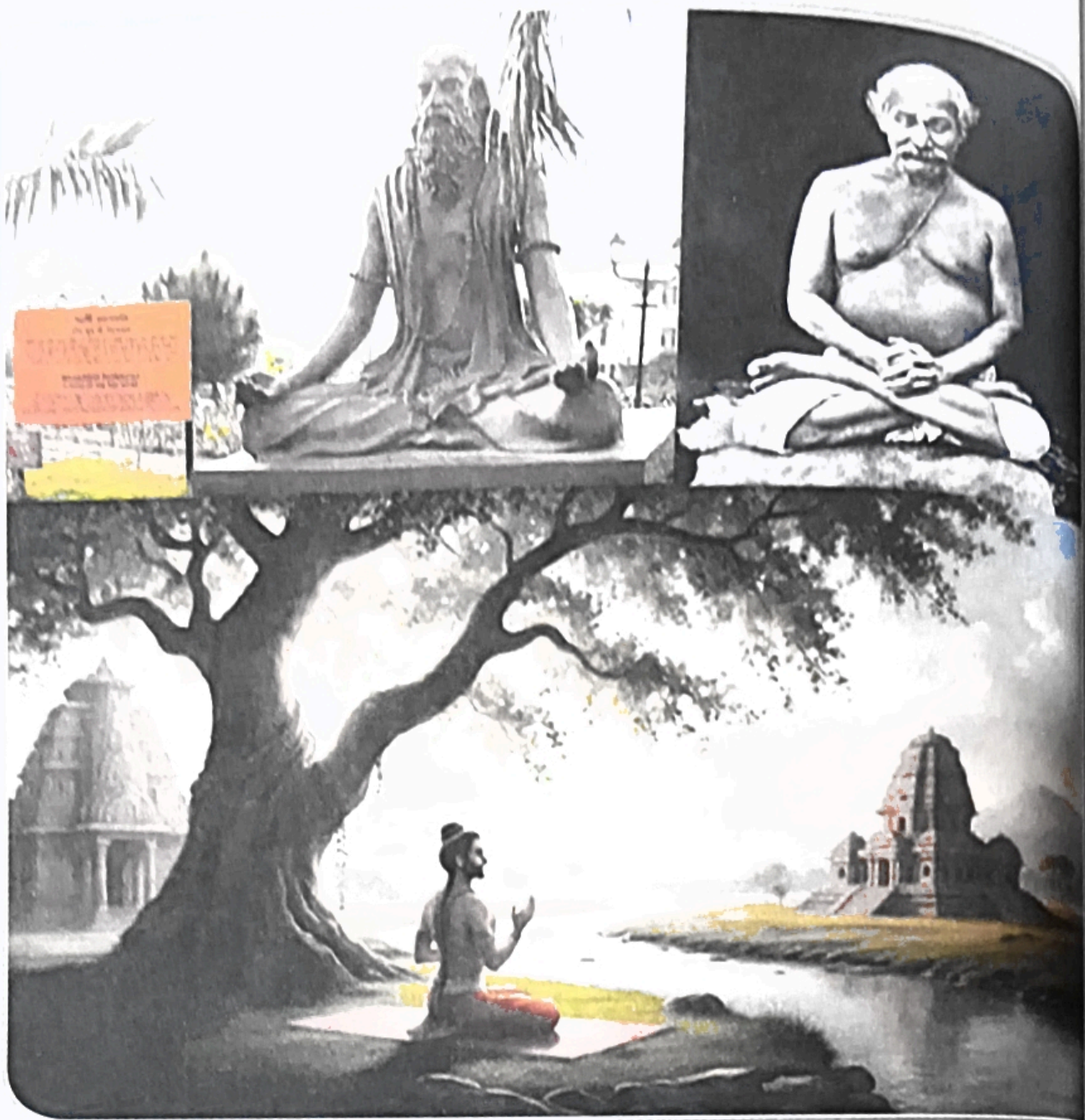
18. पारंपरिक आयुर्वेदिक आरोग्य विधियाँ

आयुर्वेद का चिकित्सीय आयाम हर्बल योग, भस्म (धातु और खनिज से बने योग), और औषधीय तेल एवं घृत का समावेश करता है। उपचारों को प्रायः विभिन्न जड़ी-बूटियों के साथ मिश्रित किया जाता है ताकि उनके अवशोषण को बढ़ाया जा सके और उनकी विषाक्तता को कम किया जा सके। रसायन, जो आधुनिक आहार पूरकों के समान हैं, पोषण, प्रतिरोधक क्षमता, और पोषक तत्वों की जैव उपलब्धता को बढ़ाने के लिए तैयार किए जाते हैं। भस्म, जो धातुओं और खनिजों के शुद्ध किए गए रूप हैं, आयुर्वेदिक ग्रंथों में वर्णित जटिल प्रक्रियाओं के माध्यम से तैयार किए जाते हैं, जिससे वे चिकित्सा उपयोग के लिए सुरक्षित और प्रभावी बनते हैं।

आयुर्वेद की एक अनोखी विशेषता है इसका विषहरण उपचार, जिसे पंचकर्म कहते हैं। इस प्रक्रिया की शुरुआत पूर्व-उपचार विधियों से होती है, जैसे तेल मालिश, स्वेदन (पसीना लाना), और चयापचय को बढ़ाने वाली जड़ी-बूटियाँ। दूसरी अवस्था में शोधन पद्धतियाँ अपनाई जाती हैं, जैसे वमन (उल्टी), विरेचन, बस्ती (एनीमा), और रक्तमोक्षण (रक्तस्राव) द्वारा शरीर से विषाक्त पदार्थों को बाहर निकालना। अंतिम चरण पुनःस्थापन पर केंद्रित होता है, जिसमें संतुलन बनाए रखने और पुनः रोग होने से बचने के लिए आहार और जीवनशैली में परिवर्तन की सलाह दी जाती है।

शारीरिक चिकित्सा, विशेष रूप से मालिश, आयुर्वेद में एक विशेष स्थान रखती है। शरीर के महत्वपूर्ण बिंदु, जिन्हें मर्म बिंदु कहा जाता है, जहाँ मांसपेशियाँ, हड्डियाँ और नसें मिलती हैं, ऊर्जा केंद्र माने जाते हैं। इन बिंदुओं की औषधीय तेलों से मालिश, जो व्यक्ति के दोषों और स्थिति के अनुसार तैयार की जाती है, रोगों के उपचार और शरीर को सशक्त बनाने में सहायक होती है। यह उपचारात्मक स्पर्श न केवल शारीरिक असुविधा को दूर करता है बल्कि आंतरिक संतुलन को भी बहाल करता है।

आयुर्वेद का व्यापक स्वास्थ्य दृष्टिकोण व्यक्तिगत आवश्यकताओं को समझने और उपचार को प्राकृतिक लय के साथ समायोजित करने पर बल देता है, जिससे एक संतुलित और समग्र स्वास्थ्य यात्रा सुनिश्चित होती है।



पतंजलि की एक मूर्ति (जिन्होंने योग सूत्र लिखा है), ध्यान का अभ्यास करते हुए – जो योग के आठ अंगों में से एक है जिसे उन्होंने परिभाषित किया; लाहिरी महाशय पद्मासन में, जो एक प्राचीन बैठने वाली ध्यान मुद्रा है।

19. योग: स्वास्थ्य और तंदुरुस्ती के लिए एक जीवनशैली

आधुनिक जीवन की आपाधापी में संतुलन प्राप्त करना एक कठिन और क्षीण होती हुई आशा बन गई है। जो कभी केवल एक विशेष सुविधा मानी जाती थी – कार्य और जीवन का संतुलन, अब शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य हेतु एक अनिवार्यता बन गया है। फिर

भी, संसारभर में कर्मचारी स्वयं को अंतहीन कार्यघंटों, बढ़ते तनाव, और दैनिक जीवन की अर्थहीनता के चक्रव्यूह में उलझा हुआ पाते हैं। यह तनाव केवल कार्यक्षेत्र तक सीमित नहीं रहता, बल्कि धीरे-धीरे व्यक्तिगत जीवन, संबंधों, स्वास्थ्य, और समग्र सुख-शांति को भी प्रभावित करता है। इस असंतुलन का समाधान खोजने हेतु आज अनेक लोग प्राचीन भारतीय परंपराओं की ओर लौट रहे हैं, जो आंतरिक शांति और शारीरिक स्वास्थ्य दोनों का पोषण करती हैं।

योग, जो कि एक प्राचीन भारतीय साधना पद्धति है, इन आधुनिक समस्याओं का कालातीत समाधान प्रस्तुत करता है। यह केवल एक शारीरिक व्यायाम नहीं, बल्कि एक जीवनशैली है, जो मन, शरीर और आत्मा की अंतर्संबद्धता को स्वीकार करती है। योग के सिद्धांतों को अपनाकर व्यक्ति न केवल जीवन में संतुलन प्राप्त कर सकता है, अपितु तनाव को प्रभावी ढंग से नियंत्रित कर, गहन कल्याण की अनुभूति भी कर सकता है।



योग: स्वास्थ्य और कल्याण के लिए एक जीवन शैली

19.1 आधुनिक समस्या: तनाव और इसके परिणाम

तनाव आज के समय की एक मौन महामारी बन चुका है, जो न केवल उच्च रक्तचाप, मधुमेह, और हृदय रोगों जैसे शारीरिक विकारों में प्रकट होता है, बल्कि चिंता, मानसिक थकान, एवं उदासी जैसी मानसिक समस्याओं में भी परिलक्षित होता है। अनेक लोगों के लिए कार्यक्षेत्र ही इस तनाव का मुख्य कारण है, जहाँ दीर्घ कार्य-घंटे और लगातार अपेक्षाएँ व्यक्ति को थकान, चिड़चिड़ाहट, तथा अकुशलता की भावना से भर देती हैं।

यह दीर्घकालिक तनाव न केवल कार्यक्षमता को घटाता है, बल्कि व्यक्तिगत और सामाजिक संबंधों पर भी गहरा प्रभाव डालता है। परिवार इस तनाव का सबसे अधिक

भार वहन करते हैं, और इसका आर्थिक, भावनात्मक व सामाजिक मूल्य अत्यंत बड़ा होता है। चिकित्सक प्रायः ऐसी स्थितियों में केवल औषधि नहीं, बल्कि जीवनशैली परिवर्तन की भी सलाह देते हैं। और यहीं पर योग का सौंदर्य निहित है – एक ऐसी सम्पूर्ण जीवनपद्धति, जो इन चुनौतियों का समग्र समाधान प्रस्तुत करती है।

योग: तंदुरुस्ती के लिए एक समग्र दृष्टिकोण

योग केवल शारीरिक आसनों का अभ्यास नहीं है; यह एक समग्र विज्ञान है जो जीवन के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक आयामों को एकीकृत करता है। भारतीय दर्शन निहित, योग सदियों से एक मार्गदर्शक प्रकाश रहा है, जो संतुलित जीवन जीने के लिए व्यावहारिक उपकरण प्रदान करता है।

योग की विशिष्टता इसके एकीकृत दृष्टिकोण में है। जबकि आसन (मुद्राएँ) शरीर को लचीला और मजबूत बनाए रखते हैं, प्राणायाम (श्वास तकनीकें) ऊर्जा के प्रवाह को नियंत्रित करती हैं, और ध्यान मन को शांति प्रदान करता है। मिलकर, ये अभ्यास तनाव को प्रबंधित करने, स्वास्थ्य सुधारने, और आंतरिक शांति को बढ़ावा देने का एक समग्र तरीका प्रदान करते हैं।

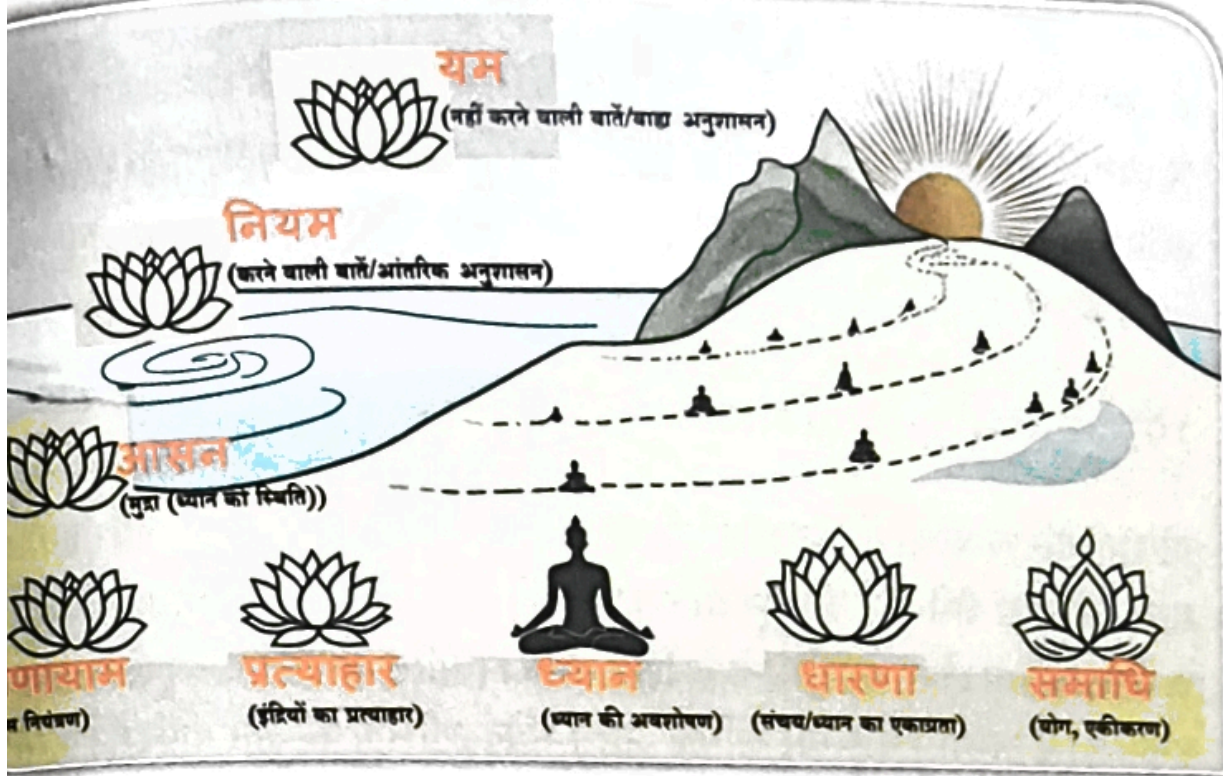
योग का दर्शन

योग का मूल उद्देश्य स्वयं और संसार, विचारों और क्रियाओं के बीच सामंजस्य स्थापित करना है। पतंजलि के योग सूत्र, जो योग के मौलिक ग्रंथों में से एक हैं, इस सामंजस्य को प्राप्त करने के लिए अष्टांग योग का एक आठ-फोल्ड मार्ग प्रस्तुत करते हैं। यह मार्ग नैतिक आचरण, मानसिक अनुशासन और आध्यात्मिक ज्ञान को विकसित करने के लिए एक चरणबद्ध मार्गदर्शन प्रदान करता है।

यात्रा बाहरी अभ्यासों जैसे यम और नियम से शुरू होती है, जो नैतिक आचरण और व्यक्तिगत अनुशासन पर केंद्रित होते हैं, और फिर यह आंतरिक अभ्यासों जैसे धारणा (संकेंद्रण) और ध्यान की ओर बढ़ती है, जो अंततः समाधि, आत्मज्ञान और शांति की अवस्था तक पहुंचती है।

योग के माध्यम से तनाव प्रबंधन

योग तनाव को एक अद्वितीय और गहरे तरीके से संबोधित करता है। अस्थायी समाधान के विपरीत, योग तनाव के जड़ों में गहराई से प्रवेश करता है, जिससे व्यक्ति अपनी अवचेतन आदतों और पैटर्न को अधिक जागरूकता से समझ पाते हैं।



(योग के आठ अंग)

आसन और प्राणायाम का अभ्यास करके, शरीर और मन, जीवन की चुनौतियों को अनुकूलता के साथ संभालने के लिए तैयार हो जाते हैं। ये अभ्यास स्वायत्त तंत्रिका तंत्र को नियंत्रित करते हैं, जिससे सहानुभूतिपूर्ण (तनाव प्रतिक्रिया) और पैरासिम्पेथेटिक (विश्राम प्रतिक्रिया) तंत्रों के बीच संतुलन पुनर्स्थापित होता है। ध्यान, इस बीच, आत्म-जागरूकता को बढ़ाता है, जिससे व्यक्ति तनावपूर्ण स्थितियों का सामना शांतिपूर्णता और स्पष्टता से कर पाते हैं।

19.2 परिवर्तन की ओर एक मार्ग

योग जीवनशैली रूपांतरकारी है, जो किसी के अस्तित्व के हर पहलू को संबोधित करती है—

- **शारीरिक तंदुरुस्ती:** आसनों का नियमित अभ्यास लचीलापन, शक्ति और जीवनशक्ति को बढ़ाता है।
- **मानसिक स्पष्टता:** ध्यान और जागरूकता के अभ्यास भावनात्मक स्थिरता और लचीलापन को बढ़ावा देते हैं।
- **आध्यात्मिक विकास:** आत्म-अनुशासन और आत्मनिरीक्षण के माध्यम से, योग एक व्यक्ति के लक्ष्यों और दृष्टिकोण को पुनः संरेखित करने में मदद करता है, जिससे उद्देश्य और संतोष की भावना उत्पन्न होती है।

योग का अष्टांग मार्ग जीवन के प्रति संतुलित दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रेरित करता है। यम और नियम नैतिक जीवन जीने के लिए मार्गदर्शन करते हैं, जबकि आसन और प्राणायाम शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य का निर्माण करते हैं। प्रत्याहार (इंद्रिय निषेध) और धारणा जैसे अभ्यास मस्तिष्क को केंद्रित करने के लिए प्रशिक्षित करते हैं, जो गहरे ध्यान की स्थिति की नींव तैयार करता है।

19.3 दैनिक जीवन में योग

योग को दैनिक जीवन में अपनाने के लिए बड़े बदलावों की आवश्यकता नहीं होती। कुछ सरल अभ्यास जैसे दिन की शुरुआत कुछ क्षणों के ध्यान से करना, श्वास पर ध्यान देने के लिए विश्राम लेना, या आसनों के लिए समय निर्धारित करना, महत्वपूर्ण बदलाव ला सकते हैं। ये अभ्यास धीरे-धीरे अधिक आत्म-संवेदनशीलता की ओर मार्गदर्शन करते हैं, जो व्यक्तियों को जीवन में शांति और संतुलन के साथ जीने में सहायक होते हैं।

कर्म योग, या निःस्वार्थ क्रिया का मार्ग, हमें हमारे कर्तव्यों को ध्यान और समर्पण के साथ, बिना परिणामों से जुड़ी उम्मीदों के निभाने की शिक्षा देता है। यह मानसिकता तनाव को कम करती है, क्योंकि यह बाहरी प्रशंसा से अधिक आंतरिक संतोष पर ध्यान केंद्रित करती है।

20. निष्कर्ष

इस ग्रंथ में आयुर्वेद एवं योग – भारत की दो महानतम और कालजयी जीवन-परंपराओं – का गहन अनुशीलन प्रस्तुत किया गया है। त्रिदोष सिद्धांत, प्रकृति-आधारित उपचार प्रणाली, अग्नि की भूमिका, सप्त धातुओं का कार्य, दैनिक एवं ऋतुचर्या, तथा स्वास्थ्य की दर्शनात्मक नींवों के विस्तार से यह स्पष्ट होता है कि आयुर्वेद एवं योग केवल रोगों के उपचार नहीं, अपितु संतुलित, उद्देश्यपूर्ण और पूर्ण जीवन जीने की एक सम्पूर्ण जीवन-पद्धति प्रदान करते हैं।

आज के युग में, जहाँ तनाव, विकृत जीवनशैली और मानसिक तनाव व्याप्त हैं, वहाँ आयुर्वेद और योग की शिक्षाएँ केवल रोग निवारण का माध्यम नहीं, अपितु रोगों की रोकथाम, आत्मचिंतन, भावनात्मक दृढ़ता और आध्यात्मिक उत्कर्ष का मार्ग भी प्रशस्त करती हैं। शरीर, मन और आत्मा की एकता पर आधारित यह दृष्टिकोण आधुनिक चिकित्सा की खंडित प्रवृत्तियों के विपरीत, प्राकृतिक लय, स्व-अनुशासन, और सजग जीवन को प्रोत्साहित करता है।

वेदों, संहिताओं और योगग्रंथों में निहित इन प्राचीन साधनाओं को पुनः जाग्रत कर यह ग्रंथ पाठकों को उनकी स्वाभाविक आरोग्यता, संतुलन एवं आंतरिक आनन्द को पुनः प्राप्त करने हेतु प्रेरित करता है। अतः आयुर्वेद और योग केवल अतीत की धरोहर नहीं, अपितु जीवित एवं युगानुकूल विज्ञान हैं, जो आज के जीवन में और भी अधिक आवश्यक हो चले हैं।

यह ज्ञान केवल पृष्ठों में सीमित न रहे, अपितु इसे प्रतिदिन, जागरूकता एवं श्रद्धा के साथ जीवन में उतारें। क्योंकि ऐसा करने से हम केवल एक परंपरा की रक्षा नहीं करते, बल्कि उस जीवन-पद्धति का पुनर्जागरण करते हैं, जो शरीर, मन और आत्मा – तीनों का समुचित पोषण करती है।